विप्लवी जयप्रकाश

लेखक—

'जय हिन्द' '१६४२ की क्रान्ति'

तथा 'नेता जी'

आदि पुस्तकों के

प्रणेता

पं० श्री श्रीराम

—)-:○:*:○:-(—

सरस्वती पुस्तक-मन्दिर,

जोगीवाड़ा, नई सड़क

दिल्ली।

प्रकाशक—
सरस्वती पुस्तक-मन्दिर,
जोगीवाड़ा, नई सड़क
दिल्ली।

★

प्रथम बार
१९४७
१।)

मुद्रक—
सरस्वती प्रेस,
जोगीवाड़ा, नई सड़क
दिल्ली।

श्री रामचन्द्र जी भारती बी० ए० एल० टी०

मातृ-भाषा हिन्दी के निस्पृह साधक, साहित्य

और

साहित्यकारों के सफल स्रष्टा,

सुदूरपूर्व ब्रह्मदेश में हिन्दी के

अद्वितीय प्रचारक,

श्री रामचन्द्र जी भारती

बी. ए. एल. टी.

(भूतपूर्व प्रिंसिपल रामजस हाई स्कूल,

नई दिल्ली)

का सादर

—श्री श्रीराम

★

आज भरत देश को 'प्रकाश' दान चाहिये।
बीती शताब्दि पर शताब्दियां, रहे प्रसुप्त
मोह में हमारी यश-राशि वह हुई विलुप्त
देखने को आंखें नित तरसतीं हमारी रहीं—
आता असि धोने को गंगा-तट चन्द्रगुप्त!
आज हम पुकारते हैं एक कंठ-एक स्वर
साथियो, हमें स्वयं रण-विधान चाहिये॥

हम हैं प्रयाणव्रती कष्ट का न भय हमें
देखना अभीष्ट नहीं, शक्ति-संचय हमें
हम हैं अजर-अमर मृत्यु कौन चीज भला!
हमको बलि-भूमि का महान ध्यान चाहिये॥

तोड़ आज देंगे हम शृंखला युगों की क्षीण
बिखरा चिता की चिनगारी भी न होंगे दीन
दिन कठिन काटतीं मा ज्योति-केंद्र मान हमें
देना रे, उसे है आज शत्रु से सुहाग छीन
व्यर्थ ही भ्रमों में हमें लोग बहकाते रहे
हमको 'विधान' नहीं, हां 'कमान' चाहिये॥

मंद पड़े नभ-नक्षत्र देख उषा-काल अब
मंद पड़ी दीप-शिखा देख रवि-भाल अब
रुकते नहीं हैं कभी भी उठे हुए चरण
जागरण-घड़ी है, नष्ट होगा तम-जाल अब
भूलकर अतीत गान गाओ कवि गीत नव्य
"नवयुग" पुकारता है, 'नव-जवान चाहिये॥'

'मंगल-रश्मि'

हमारी दो बातें

रूस के लिए 'लेनिन' नाम जितना आकर्षण रखता है, ठीक उतना ही आकर्षण भारतवासियों के हृदय में जयप्रकाश के लिए है। जयप्रकाश ने अपना यह स्थान अपनी कर्तव्य-निष्ठा, त्याग और कठोर साधना से प्राप्त किया है—किसी के वरदान और समर्थन का भार उसकी पीठ पर नहीं है। समय और अवसर का लाभ उठाने का सुयोग उसे मिला नहीं, वह सुयोग का लाभ उठाना नहीं चाहता, इस तरह उसकी कर्तव्य-निष्ठा का मूल्य ही नहीं रह जाता। वह एक विप्लवी के रूप में जनता की आंखों के सामने आया और दुनिया देखती है, हम-आप सभी देखते हैं, उसका विप्लवी रूप दिन-प्रति-दिन आकर्षक ही होता जा रहा है। सत्य का प्रयोग यदि गह्य नहीं हो तो आज कुछ चोटी के नेता—नेता ही कहिये–इन्द्र की तरह उसकी तपस्या से भय खा रहे हैं, कहीं उनको वह स्थान-भ्रष्ट न करदे, मगर उस निस्पृह हृदय में नेता बनने की बात दूर छोड़िए, मामूली सर्दार बनने की भी कामना नहीं है। उसे अपने काम से फुर्सत कहां, जो ऐसी कामनाओं के पीछे सिर मारे।

यह हमारा-आपका काम है कि उसे लक्ष्य कर मन्त्र-मुग्ध कह उठते हैं— "हैं नखत अमा के डूब रहे, सारा आकाश तुम्हारा है।"

और निश्चय ही—आज न कल यह तथाकथित नेताओं के नक्षत्र डूबते दिखाई देंगे। आसार ऐसे ही दीख रहे हैं: प्राची-भाल पर चमक रहा है मात्र 'जय प्रकाश'

देश-गौरव 'जय प्रकाश'

देश-रत्न 'जय प्रकाश'

सैनिक 'जय प्रकाश'; किसी भी रूप में उसे देखिए, वह सभी रूपों में खरा उतरेगा। अगस्त-क्रान्ति के अग्रदूत के रूप में—भारत के बच्चे-बच्चे की जबान पर 'जय प्रकाश' है। हजारी बाग-सेंट्रल जेल की चहार दिवारी को धता बताने वाले, अपने को मृत्यु-मुख में फेंक कर जीवन की मंजिल तय करने वाले— विप्लवी का सम्मान जिस किसी रूप में किया जाय, वही सही है।

प्रस्तुत पुस्तक—'विप्लवी जय प्रकाश' हिन्दी के मननशील विद्वान पं० श्री श्रीराम जी की लोह-लेखनी की प्रसाद है। पत्रों में प्रकाशित—जय प्रकाश सम्बन्धी विवरणों की कतरन से इसका निर्माण नहीं हुआ है, न-ही इसमें केवल जय प्रकाश के जीवन वृत्त को ही दुहराया गया है। विद्वान लेखक का प्रयास, हिन्दी-संसार के सम्मुख 'जय प्रकाश' को ठीक रूप में रखने और परखने का स्पष्ट है—उन्होंने इसी भावना को लेकर पुस्तक

में जय प्रकाश के विचारों पर ही अधिक श्रम किया है। किसी भी व्यक्ति को आप उसके विचारों को समझते हुए ही अधिक गहराई से समझ सकेंगे—इस दृष्टि-कोण से 'विप्लवी जय प्रकाश' पुस्तक अपने ढंग की पहली सफल पुस्तक है।

पं० श्री श्रीराम जी आज हिन्दी संसार में इतने अपरिचित नहीं रह गए हैं कि उनका परिचय किसी और को कराना पड़े। 'जय हिन्द' पुस्तक उनकी प्रथम कृति थी—उसे दिल्ली प्रान्त की सरकार ने प्रकाशित होते ही जब्त करली थी, दूसरी रचना '१९४२ की क्रान्ति' आज भी जब्त पुस्तकों की सरकारी सूची में पड़ी है। उनकी पुस्तकों पर सर्दार शार्दूलसिंह कवीश्वर, संमान्य शरत्‌चन्द्र बोस, क्रांतिकारिणी अरुणा और कप्तान लक्ष्मी आदि की सद्भावना की मुहर लग चुकी है। ऐसी स्थिति में हमारी प्रशंसा की कोई आवश्यकता नहीं।

'फिनिसिंग टच' के साथ हमारा आग्रह है आप अब 'विप्लवी जय प्रकाश' का परायण कीजिये—

दिल्ली —कुमुद विद्यालंकार

"जयप्रकाश" हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई के एक असाधारण सेनापति हैं। कोई भी देश ऐसे नर-रत्नों को पाकर गर्व कर सकता है। जवाहरलाल और सुभाष की तरह उनमें भी अधीरता की मात्रा ज़रूरत से ज्यादा है, परन्तु यह तो आज की परिस्थितियों का एक गुण है।"

"मैं जय प्रकाश को अत्यन्त प्रीति और सम्मान की दृष्टि से देखता हूँ।"

—महात्मा गांधी

विप्लवी जयप्रकाश

अगस्त-क्रांति के अग्नि-कुण्ड से तप्त स्वर्ण की तरह उज्वल होकर निकलने के बाद, जय प्रकाश नारायण का नाम उन नामों में आगया है, जिन्हें सर्व साधारण जानते और हृदय की श्रद्धा उन पर उँडेलते रहते हैं। यह भी निःसंकोच कहा जा सकता है कि आज की दुनियां में जय प्रकाश नारायण का नाम भारतीय युवकों में हृदय-सम्राट का आसन ग्रहण कर चुका है।

यहीं तक नहीं लोगों ने अपनी भावना का परिचय और भी आगे बढ़कर दिया है, हृदय-हृदय की श्रद्धा उन्हें भारतीय-गगन में इतना व्यापक व्यक्तित्व लिए देखती है, जिसकी कल्पना उन्हें गगन-मंडल के अधिपति सूर्य का रूप देती है—जन-वाणी का स्वर बिना किसी तरह का बंधन स्वीकार किए तीव्र हो उठता है–"हैं नखत अमा के डूब चुके, सारा आकाश तुम्हारा है।"

कौन कह सकता है—वर्तमान राजनीति-गगन में जय-प्रकाश नारायण का सर्वोच्च आसन नहीं है? जय प्रकाश नारायण—इस नवयुग, प्रकाश-युग का अग्रदूत है। अमा के नगण्य नक्षत्र डूब गए, उनका अस्तित्व आज नहीं है, ऐसा तो

नहीं कहा जा सकता, प्रभात-कालीन मंद ज्योति नक्षत्रों की तरह उनका अस्तित्व अभी है, मगर निश्चय ही जनता के हृदय में उनका कोई स्थान नहीं; सबकी आंखें जय प्रकाश नारायण की ओर हैं—प्रकाश-युग में यह है जय प्रकाश नारायण का प्रभाव।

जय प्रकाश नारायण आकस्मिक रूप से जनता के सामने आये हैं, संयोग ने उन्हें ऊपर नहीं उठा दिया है। भारतीय राजनीति-गगन में उनका आगमन अपनी गति में हुआ है। एक रस अपनी सेवाओं के साथ वह बढ़ते रहे हैं। १९३०-३२ का सविनय अवज्ञा-आन्दोलन का सिपाही, दश वर्ष के बाद ४२ में सेनापति का आसन ग्रहण करने को विवश हुआ—विवश इसलिए कि तथाकथित सेनापतियों का हृदय उस अगम्य क्रांति की भीषणता में कांप उठा; वह चारो ओर से बचाव ढूंढने लगे। उन सब के सामने, रण-भूमि की चोटों के लिए सीना आगे कर देने के बनिस्बत, बंदी जीवन अपनाकर शांति-लाभ का आकर्षण काम कर रहा था। एक शब्द में, अत्याचारों की विभीषिका उन तथाकथित सेनापतियों से झेली नहीं गई। जय प्रकाश नारायण सामने आये।

शांति-काल का सेनापतित्व होता तो निश्चय ही उनके शिर वह सेहरा नहीं बँधता। वह अवसर था प्राणों पर खेलने का, प्रति द्वंदिता के लिये आगे आये तो कौन? और जयप्रकाश नारायण सब कुछ सोचकर आगे बढ़ रहे थे। सेनापतित्व का

लक्ष्य उनके सामने नहीं था, उनके सामने था उनका कर्त्तव्य। वह उस क्रांति में स्वतंत्रता या मौत का निश्चय अपनाकर आये थे। विश्रामहीन, आगे बढ़ते हुये, केवल आगे बढ़ते हुये उन्होंने जिस उमंग की मिशाल दुनिया के सामने रखी. जिस कष्ट-सहिष्णुता का आदर्श अपनाया, वह अब तक के इतिहास में देश गौरव सुभाष के अतिरिक्त और किसी के लिये लभ्य नहीं रहा है।

जय प्रकाश नारायण ने अपना स्थान स्वयं बनाया है, किसी के समर्थन-आशीर्वाद का भार लेकर उन्होंने यह प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त की है। वह भारतीय लेनिन हैं और सही रूप में लेनिन हैं।

बालक जयप्रकाश

बिहार की पुण्य-भूमि में ही तथागत बुद्ध और जिनेश्वर महावीर खेल-खेलकर विश्व को ज्ञानदान देने में समर्थ हुये, कपिल का सांख्य शास्त्र बिहार की धूल-मिट्टी का बल अपनाकर रचा गया। प्रिय दर्शी अशोक, बिहार की गोद में पलकर महान अशोक का पद अपना सका—वही बिहार यदि आज जय प्रकाश और राजेन्द्र को जन्म देता है, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

कवि गुरु रवीन्द्र ने एक स्थान पर महान मानवों की चर्चा करते हुए लिखा है कि जितने भी महापुरुष हुये हैं, वह किसी एकांत गांव की देन हैं। आकर्षण से भरे नगर किसी भी रूप में गांव की समानता नहीं कर सकते। ईश्वर का वास जीर्ण-झोंपड़ियों से भरे गांवों में होता है। उसकी अलौकिक विभूतियां भी समय-समय पर गांवों में ही प्रगट होती हैं।

तो सारण जिले के सिताब दियरा और जीरादेई ऐसे ही गांव हैं। जीरादेई ने राजेन्द्र जैसा रत्न पैदा किया और

सिताब दियरा ने जय प्रकाश जैसा मणि हमारे सामने प्रस्तुत किया। दोनो नमस्य दोनो वरेण्य।

आज से ४३ वर्ष पूर्व की बात है—बालक जय प्रकाश को गोद में लेकर सिताब दियरा का वह कुटीर हर्षोन्मत हो रहा था। घर वाले भले ही उस समय उस बालक के भविष्य का अनुमान नहीं लगा सकते थे मगर कुटीर तो अपना सौभाग्य का भविष्य निश्चित आंखों से देख रहा था। वह जानता था, दरिद्र परिवार का यह बालक किसी दिन भारत का मुकुट मणि बनकर रहेगा।

जयप्रकाश का बालक-जीवन उन्हीं साधारण बालकों का जीवन था—जिसमें कोई विशेष बात नहीं ढूंढ़ी जाती। वह धनी परिवार के बालक होते तो कुछ गढ़ी-गढ़ाई बातें भी लोगों में फैल सकती थीं। वह आरंभिक पढ़ाई समाप्त कर उच्च शिक्षा के लिए पटना विश्व विद्यालय में प्रविष्ट हुए। वहां लोगों को इतना जरूर मालूम हुआ कि यह नवीन विद्यार्थी जितना ही कविता-प्रेमी है, उतना ही विज्ञान का भक्त भी। ऐसे बहुत कम विद्यार्थी देखने में आते हैं; जो समान भाव से कविता और विज्ञान के भक्त हों। जयप्रकाश इसके अपवाद थे।

उनके विश्व विद्यालय के जीवन में ही १६२१ का असहयोग आन्दोलन अपना उग्र रूप लेकर आया। वह आन्दोलन कुछ अपूर्व प्रभाव रखता था, सच पूछा जाय तो विकसित रूप में असहयोग आन्दोलन उसी बार आया था। उसके पहले

कांग्रेस का प्रभाव कुछ ऊँचे उठे हुए लोगों के हृदयों में ही देखा--समझा जा सकता था। उस साल साधारण जनता भी असहयोग की लड़ाई में योग देने आगे आई, पांच वर्ष के बच्चे भी एक बार 'गांधी जी की जय' पुकारने को आकुल हुए। १६२१ का महत्व, असहयोग के इतिहास में, बहुत बड़ा है। स्कूल और कालेजों का बहिष्कार, उस साल की लड़ाई का खास विशेषता थी। गांधी जी ने सरकारी शिक्षा-संस्थाओं के बहिष्कार की अपील की। पटना में मौलाना आजाद ने विद्यार्थियों को राष्ट्रीय संग्राम में पूर्ण रूप से भाग लेने के लिए ललकारा। यह कब सम्भव था कि जय प्रकाश के भावुक-हृदय पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता, वह भी दूसरे छात्रों के साथ कालेज छोड़ कर बाहर निकल आए।

पहली बार जय प्रकाश की पढ़ाई में व्यवधान आया।

असहयोग की लहर आई और चली गई। चौरी-चौरा हत्याकाण्ड को लेकर १६२१ का आन्दोलन शिथिल हो गया। कुछ देर के लिए असहयोग में भाग लेने वाले वृद्ध-युवक-बच्चे सभी के सभी कर्त्तव्य विमूढ़ बन गए। विद्यार्थियों ने फिर से त्यक्त कालेज अपनाया। जय प्रकाश के हृदय में जागृत विद्या-प्राप्ति की लालसा, फिर से उन्हें आगे बढ़ा ले चली। उनके स्वप्न उनके सामने उभर रहे थे। उन स्वप्नों में भारतीय उच्च-शिक्षा के ही मन्सूबे नहीं थे, विदेशों में जाकर पराक्रमी जीवन अपनाकर उच्च शिक्षा-प्राप्ति की उमंग थी।

उनके मधुर स्वप्नों में सबसे मधुर स्वप्न, विज्ञान की ऊँची-से-ऊँची शिक्षा प्राप्त कर, अपने प्रान्त में एक बड़ी रसायनशाला खोलने से सम्बन्ध रखता था। वह चाहते थे, आचार्य प्रफुल्ल के 'बंगाल केमिकल वर्क्स' की तरह बिहार में 'बिहार-केमिकल वर्क्स' का जन्म देना—और इसके लिए वह अर्से से उत्कंठा पाल रहे थे।

इन स्वप्नों के बावजूद भी उन्हें यह सोच कर बड़ी पीड़ा होती थी कि आखिर विदेश जाने की सुविधा और साधन किस तरह मिले ? वह घर के साधन-सम्पन्न तो थे नहीं, फिर यह समस्या हल हो तो कैसे हल हो ? फिर भी वह हिम्मत हारने वाले व्यक्ति नहीं थे—उन्हें अपने उद्योग पर विश्वास था; वह इस ओर प्रयत्नशील रहे और एक ऐसा सुयोग सामने आया कि उन्होंने किसी तरह विदेश जाने का प्रबन्ध कर लिया। जिस दिन उन्होंने अपने को अमेरिका के मार्ग में पाया उन्हें अपनी दरिद्रता पर हर्ष-पूर्ण रोमांच हो आया। कहना नहीं होगा, अमेरिका—प्रस्थान से पूर्व ही जय प्रकाश का विवाह बिहार के एक प्रतिष्ठित कांग्रेस कार्य कर्ता श्री ब्रजकिशोर प्रसाद की कन्या श्रीमती प्रभावती से हो चुका था। जय प्रकाश जब विदा हो गए तब प्रभावती ने गांधी जी के साबरमती आश्रम में रहने का निश्चय किया। यह भी नियति का एक खेल ही था कि उसने प्रभावती को उस रेशमी डोर के रूप में चुना जो महात्मा जी और जय प्रकाश को जोड़ती है।

प्रवासी युवक का जीवन

अमेरिका पहुँच कर जय प्रकाश जिस कठोर साधना के जीवन में पहुँच गए, उसमें हर किसी के लिए सफलता की आशा नहीं की जा सकती। सुदूर विदेशः पैसे का एकान्त अभाव : दोनों ही कठिनाइयां हृदय को पस्त कर देने वाली कठिनाइयां थी। पढ़ाई की उमंग में स्पंदन मिलता तो रोटी की चिंता में कंपन अपनाना पड़ता—कहना नहीं होगा जय प्रकाश ने कर्मठ युवक का पार्ट अदा किया। वह विश्व विद्यालय के अवकाश के दिनों में श्रम पूर्वक मजदूरी करते और पढ़ाई के दिनों में विद्याध्ययन में संलग्न रहते। मजदूरी का एक-एक पैसा का उचित उपयोग किए बिना, उन का वहां टिकना मुश्किल हो जाता।

कितने ही दिन जय प्रकाश की जिन्दगी में ऐसे भी आए जब किसी होटल में भोजन करने के लिए उनके पास पैसे ही नहीं होते और विवश होकर उन्हें भुने हुए चने आदि किसी अन्य सस्ती चीज से उदर-पूर्ति करनी पड़ती। मजदूरी के सिलसिले में उन्हें बगीचों में फल तोड़ना और उन्हें टोकरियों में पैक करना ही नहीं, खेतों में हल चलाना, होटलों में बर्तन साफ

करना तथा दूसरे प्रकार के अन्य कठिन शारिरिक श्रम भी करने पड़ते थे।

यह स्पष्ट है कि भिन्न-भिन्न प्रकार की मजदूरी करते हुए जय प्रकाश का ध्यान मजदूरों की अवस्था पर स्वभावतः गया। मजदूरों की गरीबी की समस्या, उनकी अपनी समस्या बन कर रह गई।

उन्हीं दिनों न्यूयार्क के एक अध्ययन-मण्डल में, जिसका नाम सरकिल आप गौडलेस था, उनका परिचय समाज वादी विचार-धारा के प्रचारक एक यहूदी प्रोफेसर से हुआ। उसके संपर्क में उन्हें अपने पूर्व विचार बदल देने पड़े। विज्ञान की जिस बड़ी लालसा को लेकर वह अमेरिका गए थे, उसका खात्मा होगया। समाज वादी विचार-धारा के साथ प्रोफेसर ने उन्हें बताया कि "जब तक राज्य सत्ता की बागडोर शोषित जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में नहीं आती और पूंजीपतियों का मुनाफा रोकने का उपाय नहीं किया जाता, तब तक विज्ञान का उपयोग पूंजी पतियों के लिए ही लाभ प्रद रहेगा।"

प्रोफेसर के विचारों से प्रभावित होकर, जय प्रकाश ने अपनी पढ़ाई का विषय ही बदल दिया। अब उन्हें अपने पिछड़े हुए देश में वैज्ञानिक-विभूति के प्रसार की इच्छा के बजाय समाज की रूप रेखा बदलने की चिंता सवार हुई!

जय प्रकाश विज्ञान को छोड़कर समाज-शास्त्र के विद्यार्थी

बन गए, और सम्मानपूर्वक उन्होंने वहां समाज शास्त्र में एम. ए. की डिग्री प्राप्त की। सोशियोलॉजी 'समाज शास्त्र' उनका अन्तिम विषय था, इसके प्रथम बायोलॉजी (जीवविज्ञान) ऐन्थ्रोपोलॉजी (मानवविज्ञान) आदि विषयों में वह पर्याप्त शिरपच्ची कर चुके थे। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि "यदि मैं राजनीति में न पड़ता तो मैं ऐन्थ्रोपोलॉजिस्ट होता।"

घर की ओर

पूरे आठ या नौ वर्ष अमेरिका में रहने के बाद, जय प्रकाश नवम्बर १९२९ में स्वदेश लौटे। इस लम्बी अवधि ने उन्हें जितना बड़ा विद्वान बनाया, उतना ही बड़ा मजदूर-जीवन का अनुभवी भी बना दिया था। सभी तरह से वह एक अति-मानव होकर लौट रहे थे— उनके रास्ते के जीवन की झांकी भारत के ही किसी यात्री ने, जो उनके साथ था, कितने सुन्दर रूप में दिया है। उसका कथन है—'मुझे अक्टूबर की एक संध्या का स्मरण आ रहा है। मैं ओरियण्ट जहाज की डेक पर महज आनन्द के लिए टहल रहा था, सहसा मेरी दृष्टि उस व्यक्ति पर पड़ी, जो अपने में ही सिमटा हुआ एक कोने में बैठा था। मैं कुछ देर तक तो ऊपर-नीचे टहलता रहा, फिर भी धीरे-धीरे उस व्यक्ति का— कहिये जय प्रकश का—अकेलापन मुझे अखरने लगा और एक अज्ञात-शक्ति की प्रेरणा से मैं उसके पास पहुंचा।

"आप बहुत अकेले प्रतीत होते हैं।"–मैंने कहा।

'जी हां' जहाज पर मेरा कोई परिचित नहीं है। मैं आठ वर्षों के बाद अमेरिका से लौट रहा हूँ।" उन्होंने कहा।

"कैसी दिलचस्प बात है! आप वहां क्या करते थे?'-मैंने पूछा

'बर्तन मांजता था!'—स्पष्ट उत्तर सामने आया।

'और भी कुछ करते थे?'—पास ही खड़े एक मित्र का प्रश्न हुआ?

'प्रो. मिलर से राजनीति पढ़ता था।'

मैं और मेरे मित्र स्तब्ध रह गए। मेरे लिए जय प्रकाश की यह पहली झांकी थी।

हम लोग १६ नवम्बर को कोलम्बो पहुँचे। जहाज ने बड़े सवेरे अपना लंगर डाला। मुझे स्मरण है, मैं चार बजे सवेरे जमीन देखने के लिए उठ गया था। जब मैं डेक पर आया तब देखा, जय प्रकाश पहले से ही वहां खड़े थे। बिना समय नष्ट किए हुए हम लोग वाई. एम. सी. ए. (ईसाई युवक संघ) के दफ्तर पहुँचे। उस समय तक हम लोगों की जेबें खाली हो चुकी थीं। जिस रुपये की आशा जय प्रकाश ने अपने आदमियों से की थी वह न मिल सके। सौभाग्य वश हम लोगों ने अपने गंतव्य स्थान के टिकट लंदन में ही खरीद लिए थे। हम दोनों घर पहुँचने के लिए व्यग्र थे। मैंने उनके सुझाव पर अपने पिता के यहां, मद्रास के स्टेशन मास्टर की मार्फत, रूपया भेजने के लिए तार दिया, किन्तु रुपया ठीक समय पर न पहुँच सका।

पहले-पहल हम लोगों ने अच्छी तरह स्नान करने का निश्चय किया और हजामत बनाने की सोची। जयप्रकाश के पास रेजर नहीं था, इसलिए मुझे अपना रेजर उनके सामने

रख देना पड़ा। प्रथम उन्होंने बाल बनाये फर मेरी बारी आई। स्नानोपरांत हम लोग 'टामस कुक एंड संस' के यहां पहुँचे। मुझे वहां अपने पत्र लेने थे। कुक कार्यालय के सामने ही 'वोसोटो होटल' था, सात या आठ रुपये की पूंजी पर हम लोगों ने उसके भीतर प्रवेश करने का दुस्साहस किया।

"एक प्लेट कढ़ी और चावल का क्या लेते हो ?"—मैंने बैरा से पूछा।

'बारह आने।' उसने उत्तर दिया।

हम लोगों का साहस बढ़ा। मैं बोला–'बहुत अच्छा। आइए, हम लोग दो प्लेट कढ़ी और चावल लें।

भोजनोपरांत जय प्रकाश ने सिगरेट मांगा। उस समय मेरे पास एक भी सिगरेट न था। विवश होकर मैंने एक पैकेट खरीद लिया और उसकी क्षतिपूर्ति में स्टेशन तक दोनों ही पैदल आए। उस समय तक मेरी जेब से दो रुपये खर्च हो गए थे। इतने कम रुपये में दूसरी बार भोजन करने का साहस नहीं हुआ, अतएव हम में से प्रत्येक ने दो केले और एक संतरे से ही काम चलाया।

बेजवाड़ा में हम लोग एक दूसरे से अलग हो गए। वह कलकत्ता चले गए और मैंने प्रयाग के लिए काजी पेट जानेवाली गाड़ी पकड़ी।'

यह छोटी सी घटना—जय प्रकाश बाबू के जीवन को किसी अंश में स्पष्ट कर देती है। उनका जीवन यदि उनके विचारों में ढल रहा है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

सेवाधर्मः परमगहनो....

जय प्रकाश का अमेरिका से समाज शास्त्र में एम. ए. होकर लौटना, तत्कालीन चोटी के नेताओं के हृदय में पर्याप्त आकर्षण पैदा कर चुका था। चारों ओर से लोग उन्हें अपने-अपने कामों में सहयोगी बनाना चाहते थे। उन्हीं दिनों महामना मालवीय जी ने हिन्दू विश्व विद्यालय में समाज-शास्त्र की पढ़ाई जारी करने का निश्चय किया था। महामना का ध्येय, आदि काल से हिन्दू विश्व विद्यालय में सर्व श्रेष्ठ विद्वानों के संग्रह करने का रहा है—ऐसी स्थिति में उनकी स्वभावतः इच्छा हुई कि जय प्रकाश को वह अपने यहां बुला लें। उन्होंने आग्रह पूर्वक जय प्रकाश को आमंत्रित किया। निश्चय था कि जय प्रकाश अपनी सेवा हिन्दू विश्व विद्यालय को अर्पित करते मगर उन्हीं दिनों रावी-तट पर लाहौर का प्रसिद्ध कांग्रेस अधिवेशन हो रहा था। अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू का मार्मिक भाषण और स्वाधीनता का उद्‌घोष देश के कर्मठ युवकों के हृदय में तूफ़ान खड़ा करने में समर्थ हुआ। जय प्रकाश का विप्लवी हृदय यह सोचने को बाध्य हुआ कि जीवन का ध्येय विश्व विद्यालय की चहार-

दीवारी में दिमाग खपाने से पूरा नहीं होगा। उसकी पूर्ति के लिए सीधा जन सम्पर्क चाहिए। मजदूर और दलित किसानों के बीच सेवा का मार्ग अपनाना ठीक रहेगा। राजनीति के आंगन में खुलकर खेलना, उनका अभीष्ट बन रहा था।

फल स्वरूप, नेहरू जी ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के आफिस में उन्हें रखने का प्रस्ताव किया और वह मजदूर अनुसंधान विभाग (लेवर रिसर्च डिपार्टमेंट) में इंचार्ज हो गए।

कांटों के पथ पर चलकर सुख का अनुभव करने वाले व्रती-वीर को मनमाना काम मिल गया। जय प्रकाश इस दायित्व से खुश ही हुए। साहस, धीरता, और सेवा..........यही तो उनके लक्ष्य रहे हैं।

जय प्रकाश सेवा व्रत के व्रती बन कर देश के संमुख आये और १९३०-३२ का राष्ट्रीय आन्दोलन भी जोरों के साथ देश के सामने आया। उस समय वह कांग्रेस के स्थानापन्न प्रधान मंत्री थे। केन्द्रीय दफ्तर की तमाम गश्ती चिट्ठिएँ उनके दस्त-खतोंसे ही भेजी जाती थी। श्रीमती नायडू उन दिनों जय प्रकाश का परिचय—'मेरे नवजवान पारसी मित्र कह कर दिया करतीं थीं। पुलिस हैरान थी। उन दिनों कांग्रेस क्षेत्र में इस बात को लोग विशेषता देते थे कि काम करते हुए भी अपने को गिरफ्तारी से बचाये रखें। पुलिस वालों को जय प्रकाश का पता ही नहीं चल पाता था। जयप्रकाश यहां-वहां सभी जगह। मौजूद—और कहीं भी नहीं।

उन्हीं कठिन परीक्षा और श्रम की घड़ियों में, ब्रिटिश पार्लमेंट का एक गैर सरकारी प्रतिनिधि मंडल, आन्दोलन के सिलसिले में अधिकारियों द्वारा किए गए अत्याचारों और उत्पीड़नों की जांच करने के लिए आया हुआ था। मित्रों की राय से दक्षिण भारत की यात्रा में जय प्रकाश उनके साथ चलने को तैयार हुए। उनका प्रयत्न मंडल को वास्तविकता से परिचय कराना था। मद्रास-स्टेशन की बात है किसी सी. आई. डी. के आफिसर ने इन्हें देखा, उसका संदेह शील हृदय यह सोचने को बाध्य हुआ कि प्रतिनिधि मंडल के साथ लम्बे छरहरे बदन का यह भारतीय युवक कौन हो सकता है ? जय प्रकाश तो नहीं हैं !—उसने जोर से पुकारा 'जय प्रकाश !' जय प्रकाश ने स्वाभाविक रीति से पीछे मुड़ कर देखा कि मुझे कौन पुकार रहा है ? बस, फिर क्या था वह फौरन ही गिरफ्तार कर लिए गए।

उसी दिन फ्रीप्रेस जनरल ने मोटे अक्षरों में छापा—"Congress brain arrested" कांग्रेस का मस्तिष्क गिरफ्तार हो गया।"

गिरफ्तार कर जय प्रकाश नासिक जेल पहुँचाये गए। कौन कह सकता है, यदि जय प्रकाश नासिक जेल के मेहमान नहीं होते तो कांग्रेस समाज वादी पार्टी का संगठन होने में कुछ और असा नही लग जाता। नासिक जेल में पहिले से ही बम्बई तथा दक्षिण के कार्य कर्ता-- कई सुप्रसिद्ध वाम पक्षीय कार्य कर्त्ता—मौजूद थे। युसुफ मेहर अली, एम. आर. मसानी, पुरुषोत्तम भीकमदास, अच्युत पटवर्धन और नारायण गोरे आदि लोगों की निरंतर बातचीत के परिणाम स्वरूप ही कांग्रेस समाजवादी पार्टी की योजना नासिक जेल में तैयार हुई।

समाजवादी दल का विस्तार

सविनय अवज्ञा-आन्दोलन बंद हो जाने पर, १६३२ में भूलाभाई देसाई के नेतृत्व में पटने में, पार्लियामेंटरी स्वराज्य-पार्टी को पुनर्जीवित करने के योजना तैयार हो रही थी। गांधी-इर्विन पैक्ट के बाद—जनता के बीच कार्य करने का कौनसा मार्ग रह गया है ? इस समस्या पर सभी कांग्रेस जन विमूढ हो रहे थे। चलती लड़ाई अचानक किस बात पर समाप्त हो गई—इसे साधारण जनता क्या सोच पाती, पढ़-लिखे जन-नायक भी बहुत कम समझ पा रहे थे। महात्मा जी का हरिजन सेवा-कार्य जरूर आगे आ गया था। सभी हृदयों में इसके लिए दिलचस्पी थी मगर कर्मठ युवक कांग्रेस को केवल इस कार्य में रत देखना नहीं चाहते थे। जय प्रकाश और उनके साथियों द्वारा स्थापित 'बिहार सोशलिस्ट पार्टी' की ओर से कांग्रेस को साम्राज्य विरोधी मोर्चा बनाने का विचार रखने वाले समाजवादियों की एक कांफ्रेंस भी उन्हीं दिनों हुई। इस कांफ्रेंस में कांग्रेस में समाज वादी पार्टी की स्थापना का निश्चय हुआ। जय प्रकाश उसके संगठन कर्ता चुने गये। बम्बई कांग्रेस के

अवसर तक भारतवर्ष में उसकी चौदह शाखायें खुल गईं। इसके बाद वह समाजवादी दल के प्रधान मंत्री हुए।

१९३६ में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में हुआ। नेहरू जी ने राष्ट्रपति की हैसियत से जय प्रकाश, आचार्य नरेन्द्र देव तथा अच्युत पटवर्धन को कांग्रेस कार्य समिति का सदस्य बनने के लिए आमंत्रित किया। कुछ क्षेत्रों में इस बात को लेकर अनेक आक्षेप भी हुए और नेहरू जी पर पक्षपात करने का आरोप लगाया गया। जय प्रकाश इस बात को सहन नहीं कर सकते थे, उन्होंने इसी कारण को लेकर, अपने साथियों समेत, कांग्रेस कार्य समिति से त्यागपत्र दे दिया।

अखिल भारतीय रूप

अखिल भारतीय समाज वादी पार्टी का पहिला अधिवेशन १९३५ में—मेरठ में हुआ था। अपने साल भर के जीवन में—१९३६ की अवधि तक में ही—पार्टी ने देश में कई विरोधी प्रदर्शन किये। किसानों के बीच, मजदूरों के बीच—जय प्रकाश उदीयमान नक्षत्र की भांति देखे जाने लगे। बिहार प्रांतीय और अखिल भारतीय किसान सभा के उच्च पदाधिकारियों में उनका नाम आया।

ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक था कि जब Government of India Act 1936 का नग्न रूप, १ अप्रेल १९३६ में देश के संमुख आया तब जनता की करुण आंखों ने जय प्रकाश को जेल के सीखचों में बन्द देखा।

यह वह समय था—जिस समय देश में कार्य करने की उमङ्ग थी, मगर कांग्रेस के उच्च पदाधिकारी ही उसे दबा रहे थे, जनता की विचार धाराएँ—कुंठित करते हुए नेता अपनी इज्जत खो रहे थे इसका अनुमान उन्हें नहीं हो रहा था। वह

नहीं चाहते थे कि अभी देश में लड़ाई की आग फैले। स्पष्ट रूप में उनके लिए यह कहना भी मुश्किल था कि हमारी आशा छोड़ दो, हम पदों के लोभ में फँस रहे हैं, और यह कहना तो और भी मुश्किल था कि आगे बढ़ो, हम तुम्हारे साथ हैं।

जनता, हृदय से वाम पक्षीय संगठन के प्रति श्रद्धा पालने को विवश हो रही थी,—भारत-गौरव सुभाष की ओर भी भारत वासियों की अखंड श्रद्धा इसी दौरान में मूर्त रूप में देखने में आई। महात्मा गांधी का वरद हस्त—उन कांग्रेस पदाधिकारियों को जीवित रखने में समर्थ होकर भी—उनकी इज्जत की रक्षा नहीं कर सका। दक्षिण पक्ष पर वाम पक्ष विजयी होकर ही रहा।

समाजवादी पार्टी और कम्यूनिस्ट

जय प्रकाश पहले अपने-आपको कम्यूनिस्ट कहते थे। कुछ दिनों तक वह अमेरिका की कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य भी रहे पर पीछे चलकर उन्होंने पार्टी का रवैया कुछ और ही देखा। भारत में भी जय प्रकाश के सामने यही स्थिति पैदा हुई। यहां की कम्यूनिस्ट पार्टी, कांग्रेस और उसके द्वारा चलाये गए जन आन्दोलनों का विरोध करती थी और जय प्रकाश कांग्रेस और उसके आन्दोलनों को ही अपना मुख्य कार्य क्षेत्र समझते थे। कम्यूनिस्टों ने अपनी दलबन्दी की नीति पर चलते हुये मजदूर आन्दोलन को तीन टुकड़ों में बांट रखा था। जय प्रकाश ने मजदूरों में एकता लाने की चेष्टा की और उन्हें अपनी चेष्टा को सफल बनाने के लिये स्वतंत्र रूप से संगठन आरंभ करना पड़ा। वह आशा करते थे कि कम्यूनिस्ट अपनी राह बदलेंगे। जय प्रकाश के समाजवादी दल के सदस्य केवल कांग्रेसी ही हो सकते थे। उनका मन्तव्य कभी कोई पार्टी बनाने का नहीं था। उनका उद्देश्य तो उन कर्मठ व्यक्तियों का संगठन करना था, जो समाजवाद में पूरा-पूरा विश्वास रखते थे।

जत प्रकाश ने मुख्य रूप में किसानों का संगठन किया—जिनकी ओर कम्यूनिस्टों ने बिल्कुल ध्यान नहीं दिया था। जय प्रकाश उनमें से एक हैं जिन्होंने किसान सभाओं का निर्माण किया।

एक बात और, जय प्रकाश की आशा के अनुसार कम्यूनिस्टों ने अपनी कार्य प्रणाली पर पुनः विचार किया। उन्होंने १६३५ में समाजवादी दल की नीति को भी स्वीकार कर लिया—भले ही वह स्वीकृति बाहरी दिखावे की स्वीकृति थी।

जय प्रकाश का प्रयत्न कम्यूनिस्टों ही को नहीं रायिस्टों और फारवर्ड ब्लाकियों को भी एकत्र कर देने का रहा, पर इसका परिणाम संतोष जनक नहीं निकला। रायिस्ट किसी तरह भी समाजवादी दल में नहीं टिक सके—थोड़े ही दिनों के बाद वह कांग्रेस के एकदम विरुद्ध हो गये। कम्यूनिस्टों ने भी राय का अनुसरण किया।

सुभाषचंद्र बोस की जलती हुई भावनाओं के नीचे देश-सेवा का व्रत लेने वाला फारवर्ड ब्लाक—पंत-प्रस्तावकी घड़ियों तक समाज वादी दल का अंग बना रहा। दोनों ही दल कर्त्तव्य क्षेत्र में आगे बढ़कर काम करने का हौसला रखते थे, दोनों ही दलों का उद्देश्य एक था फिर भी कईबातों को लेकर पंत-प्रस्ताव पर समाज वादी दल चुप रह गया—तटस्थता की नीति पर फारवर्ड ब्लाक का साथ नहीं देसका और अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखने को बाध्य हुआ।

माहयुद्ध की कठिन घड़ी

त्रिपुरी कांग्रेस के छः मास बाद ही महायुद्ध छिड़ गया। जय प्रकाश ने निर्भीक स्वर में कहा—'गुलामी की हिफाजत की जिम्मेदारी गुलामों पर हरगिज नहीं हो सकती।' महात्मा गांधी ने मुलाकात के समय वायसराय को बताया कि वह मित्र राष्ट्रों को नैतिक सहायता देने को तैयार हैं।' यह बात जय प्रकाश को पसंद नहीं आई। उन्होंने सोचा ऐसा कर कांग्रेस अपनी नैतिक मृत्यु ही लाएगी। अंगरेजों पर विश्वास करना उनकी नजरों में बहुत बड़ी गलती थी। निश्चय ही यदि पहली बार ऐसा करने का अवसर होता तो विश्वास भी किया जा सकता था, पर भारत को तो ऐसे विश्वासों में सदा ही अंगरेजों की ओर से धोखा मिला है। जो हो, जय प्रकाश ने नम्र किन्तु स्पष्ट शब्दों में महात्मा जी को चेतावनी दी कि वह साम्राज्यवादी अग्निकुंड में नैतिक सहानुभूति की आहुति देने का, वायसराय को वचन न दें।

उन्होंने कांग्रेस की इस दब्बू नीति के कारण सभी वाम-

पत्तीयों को एकत्रित कर संयुक्त कार्यक्रम बनाने की कोशिश की। साम्राज्य वादी महायुद्ध की कठिन घड़ियों में जय प्रकाश का खुल कर काम करना असंभव ही था—अतः टाटानगर के मजदूरों में उन्होंने युद्ध विरोधी प्रचार करना चाहा। मजदूरों में जय प्रकाश के प्रचार का कितना प्रभाव पड़ सकता था, यह बताने की जरूरत नहीं है; सरकार तुरत ही सशंक हो उठी। उन्हें ९ महीने के लिए जेल में डाल दिया गया। जेल से छूटने में बाद ही महाराष्ट्र में वह फिर से गिरफ्तार कर लिए गए और उन्हें नजर बंद कर देवली कैंप जेल पहुँचा दिया गया।

देवली का नर्क

देवली कैंप की कष्ट-कथाओं की बड़ी लम्बी कहानी है। उक्त कैंप जेल का निर्माण, विदेशी सरकार ने राजबंदियों को त्रस्त करने के उद्देश्य से किया था। देवली कैंप जेल में प्रायः विभिन्न प्रांतों के 'खतरनाक' बंदी ही रखे जाते थे।

कोई भले ही यह सोच ले कि देवली पहुँच कर जय प्रकाश शांत हो जाते—उस निर्जन प्रदेश में उनका मस्तिष्क शिथिल हो जाता मगर ऐसा सोचना गलत कहा जायगा। काम करने वाले कहीं शांत और शिथिल नहीं होते, फिर जय प्रकाश की बात ही और थी। वहां वह क्या सोच रहे थे, उनके दिमाग में क्या था, इसकी विभीषिका में नौकरशाही तंग आगई। उनके एक पत्र पर इतना बावैला मचा कि देश का ध्यान देवली की ओर खिंच गया। उनका वह पत्र नौकर शाही के हाथों में पड़ गया था—जय प्रकाश पर आरोप लाने के खयाल से उसने पत्र के कुछ अंशों के फोटो छपवाए—पर पत्र को पूरा का पूरा प्रकाशित कर देने का साहस वह नहीं कर सकी, सो न-ही कर सकी।

देवली कैंप जेल की भूख हड़ताल—जय प्रकाश की दृढ़ता का ज्वलंत उदाहरण कहा जायगा। स्टालिन वादी कम्यूनिस्टों ने भी वहां जय प्रकाश से सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए भूख-हड़ताल की थी पर १५ दिनों बाद ही उन्हें अपनी नीति से हट जाना पड़ा। वही क्यों, दूसरे अनेकों क्रांतिकारियों ने भी जय प्रकाश का साथ त्याग दिया मगर जय प्रकाश अटल और अडिग रहे। वह बराबर अपने साथियों के साथ डटे रहे! बीच में जय प्रकाश की हालत कमजोरी के कारण संकटापन्न हो गई तो महात्मा गांधी ने भी उनसे अनुरोध किया कि वह भूख हड़ताल छोड़ दें—मगर उन्हें तो एक बार कदम उठाकर पीछे हटना आता नहीं था।

अधिकृत रूप में सरकार ने जय प्रकाश के गुप्त पत्र के जिन अंशों का प्रचार करना चाहा, उसमें महात्मा जी के व्यक्तिगत सत्याग्रह का विरोध किया गया था. उन्होंने अपने साथियों को सत्याग्रह का प्रतिज्ञा पत्र वापिस लेकर, गुप्त संगठन का आदेश दिया था—जो भी हो, सरकार चाहती तो यह थी कि जय प्रकाश और उनके साथियों के लिए महात्मा जी और कांग्रेस वालों के हृदय में घृणा का भाव उत्पन्न हो पर महात्मा जी ने उस पर एक ऐतिहासिक वक्तव्य दिया। जो कभी भुलाया नहीं जा सकता। महात्मा जी के विचार स्पष्ट थे—उन्होंने कहा—मैं जानता हूँ, जय प्रकाश मेरी अहिंसा की नीति और सिद्धांत से सहमत नहीं पर इसी के लिए उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता।

उन्होंने अपने जीवन के अनेक वर्ष अमरीका में बिताए हैं और विदेशों में ही उन्होंने अध्ययन किया है। ऐसी दशा में उनका दृष्टिकोण और विश्वास विदेशी आन्दोलनों से अनुप्राणित हुआ है तो वह स्वाभाविक है। मुझे हर्ष है, उन्होंने जो कुछ किया है—वह पूर्ण रूप से राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए है। मेरे और उनके तरीकों में मतभेद है पर मैं एक क्षण के लिए भी उनके साहस, त्याग और विचारों की दृढ़ता में सन्देह नहीं करता। मैं नहीं समझता—वह विदेशी सत्ता, जो एक युग से भारत पर अत्याचार और हिंसक मनोवृत्तियों का प्रयोग चला रही है, किस तरह यह कहने का दावा करती है कि जय प्रकाश को अहिंसा में विश्वास नहीं है, अतः वह निन्दनीय हैं ? यदि सरकार की नजरों में सचमुच ही जय प्रकाश हिंसक मनोवृत्तियों के दोषी हैं तो भी सर्व प्रथम अपराधी वह स्वयम् है। अंगरेजी शासन के दृढ़ स्तम्भ क्लाईव और हेस्टिंग की रक्तिम होली खेलने की बात भुलाई नहीं जा सकती, छल-कपट और अत्याचारों पर ही तो उसका साम्राज्य टिका है—भारत पर उसके जुल्म गहरे घाव के रूप में हैं। पहले वह उन जुल्मियों को सजा दे।

महात्मा जी के वक्तव्य से सरकार को मुँह की खानी पड़ी। जय प्रकाश का आमरण अनशन देश में अकल्पित प्रतिक्रिया पैदा कर रहा था। विद्यार्थियों ने कानपुर, गोहाटी, बम्बई, कराची आदि नगरों में खुले प्रदर्शन किए। कई स्थानों में लाठी

चार्ज हुआ। अन्त को ३२ दिनों की भूख हड़ताल के बाद सरकार को झुकना ही पड़ा। असेम्बली में इसके विषय में अनेकों प्रश्न पूछे गए। सरकार को उन बंदियों की सब शर्तें मंजूर करनी पड़ीं और उन्हें अपने-अपने प्रांतों की जेलों में बदल दिया गया। देवली का नर्क-समाप्त कर दिया गया।

यह जय प्रकाश की महान विजय थी, यद्यपि इस भूख हड़-ताल से उनका स्वास्थ्य काफी गिर गया था।

अगस्त क्रान्ति और समाजवादी

अगस्त ४२ में जय प्रकाश का चिर प्रतीक्षित आन्दोलन रंग पर आ गया। सभी नेता जेलों में ठूंस दिए गए। जनता में अपार जोश था पर आन्दोलन की गतिविधि को नियंत्रित रखने और संचालन करने की योग्यता रखने वाला कोई नेता न था। आन्दोलन की रूप रेखा—जय प्रकाश ने पहले ही बना रखी थी और उसी पर अपने साथियों को चलने का आदेश भी दे रखा था। नेताओं की गिरफ्तारी पर सारा आन्दोलन समाजवादियों के हाथ में आ गया। समाजवादियों ने ही आन्दोलन चलाने का अपना प्रोग्राम जनता को बतलाया, देश में हजारों पर्चे बांटे गए। यह अभ्रांत है कि यदि जय प्रकाश ने पहले से आन्दोलन की रूप रेखा न बनाई होती और तैयारी न की होती तो सरकार ४२ के आन्दोलन को सहज ही कुच-लने में समर्थ हो जाती।

देश व्यापी आन्दोलन चल रहा था—जय प्रकाश अशांत मस्तिष्क अपनाए हजारी बाग जेल में विवश थे। उनके कुछ साथी पकड़े जा चुके थे और कुछ गुप्त रूप से अब भी अपना

कार्य कर रहे थे। अन्तर्द्वन्द के शिकार जय प्रकाश सोचते—'क्या ऐसी घड़ी में उन्हें कुछ करने का अवसर नहीं मिल सकेगा ?' उन्होंने जेल से भागने की अनेक योजनायें बनाईं मगर हर बार कोई न कोई बाधा आ खड़ी हुई।

कितनी ही बार तो ऐसा अवसर आया कि क्षण भर के लिए जय प्रकाश अपने को जेल की सीमा से बाहर समझने का स्वप्न देखने लगे, फिर भी उनकी काया जेल की चहार दिवारियों में ही बन्द रहीं। उन दिनों, जय प्रकाश का मस्तिष्क चौबीस घंटे के लिए स्वप्नों की भूमि बन रहा था। उनके हृदय की आकुलता का अनुमान करना सहज नहीं था। एक धुन, एक लगन-किस तरह जनता के बीच पहुंचा जाय ?

———

अन्धकार के पार—जय प्रकाश

हजारी बाग जेल की चहार दीवारी के अन्धकारप्रद घेरे के बाहर जय प्रकाश कैसे पहुंचे, यह अप्रतिम साहस की कहानी है। पग-पग पर मौत का सामना करने में जवानी ही समर्थ हो सकती है। जवानी के दीवाने ही ऐसी होड़ ले सकते हैं। जय प्रकाश और उनके साथी उन्हीं कांटों की राह से चले—आकुल अंतर—आकुल प्राण।

कामरेड रामनन्दन मिश्र—हजारी बाग जेल से जय प्रकाश के साथ भागने वाले एक साथी—का वक्तव्य है—

'कांग्रेस का क्रान्तिकारी सन्देश पहुंचाने के लिए, समाजवादी पार्टी का मिशन-प्रचार के लिए, मैं छद्म वेष में घूम रहा था। २३ सितम्बर को मैं कटक के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के यहां पहुंचा। मेरा विश्वास था कि उनके द्वारा वह सन्देश दूसरे सरकारी अफसरों में प्रचारित हो जायगा।

एक घन्टा पूर्व मैं खुफिया बच्चों को एक चिट लिखकर दे आया था। मेरी इच्छा थी कि अपना उड़ीसा का कार्य समाप्त कर उसी रात में कलकत्ता चला जाऊँ। अचानक ही मेरी आशा

को एक भारी आघात लगा। मुझे बताया गया कि उक्त मजिस्ट्रेट का घर घेर लिया गया है और अब किसी ओर से भागने की राह नहीं मिल सकती। मेरे साथ एक कार थी, मैंने चालक को उत्साह दिलाया कि वह खुफिया पुलिस के घेरे से मुझे निकाल ले जाय। खुफिया पुलिस का व्यूह तोड़ने में वह सफल रहा, मुझे ठाक फाटक की ओर से ले भागा मगर थोड़ी दूर जाकर ही उसका साहस छूट गया। उसके आत्म समर्पण के साथ मैं बन्दी बना लिया गया।

कटक जेल में बन्दी बन कर चुपचाप बैठना मुझे बहुत अखर रहा था—मेरी आंखों के आगे बाहर के साथी दीख रहे थे। उनकी व्याकुलता दीख रही थी। मैं जेल से बाहर होना चाहता था। उन दिनों सभी ओर से कार्य करने की व्याकुलता पर ही ध्यान टिक रहा था मगर मेरी इच्छा सफल कैसे होती ? जेल का प्रत्येक क्षण बेचैनी लिए आता और चला भी जाता। इसी अर्से में मुझे बरहाम पुर और रसेल कुंडा आदि जेलों की दुनिया देखने का अवसर मिला। अंत में मेरा परिवर्तन हजारी बाग जेल में कर दिया गया।

अब मैं अपने प्रांत में था और श्री योगेन्द्र शुक्ल एवं सूर्य नारायण सिंह जैसे क्रांति कारियों के बीच था। मजा यह कि वह सब भी मेरी ही तरह जेल से भागने के लिए उत्सुक-हृदय हो रहे थे। बाहर की बेकली और भी उद्विग्नता पैदा कर रही थी। अगस्त आन्दोलन दब रहा था। नेता लोग जेलों में पहुँच

कर शांति का जीवन पाल रहे थे। चलते हुए खतरे से त्राण पाने की राह थी, स्वेच्छा से जेल की ओर कदम बढ़ा देना—कुछ तथा-कथित कांग्रेस नेताओं ने इसी मार्ग का अनुसरण भी किया। भले ही आज उनका दावा हो कि अगस्त-क्रांति की आग उन्होंने ही पैदा की थी।

जय प्रकाश—जय प्रकाश, उनकी कुछ पूछिए मत।

जय प्रकाश का स्वास्थ्य अच्छा न था और बाहर से इतनी शीघ्र सहायता मिलती दिखाई नहीं देती थी फिर भी हम लोग जेल में रहना नहीं चाहते थे। एक ही लगन थी—हमें बाहर जाना ही चाहिये।

यही निश्चय रहा और इस बार हमारे इस निश्चय को बहुत ही कम लोग जानपाए। कई बार अपने विश्वस्त कहे जाने वाले कार्य कर्त्ताओं से हम लोग इस विषय में धोखा खाकर सचेत हो गए थे।

'४२ की दिवाली का योग था; सीधी-सादी भाषा में कहिए ८ नवंबर की साढ़े नौ बजे की अंधियाली। उस अंधियाली में हमारे छः साथी, स्वतंत्रता की आखिरी मंजिल तय करने के लिए सेन्ट्रल जेल की चहार दीवारी लांघने में लगे—लांघ गये। कहना नहीं होगा जेल की दीवार लांघने में हमें केवल पांच मिनट लगे।

बात यह थी, कितने दिनों से हम अपने अनुभव-वृद्ध साथी योगेन्द्र शुक्ल की देख-रेख में इसका अभ्यास कर रहे थे। यही

योजना ऐसी थी, जिसके सहारे बाहरी मदद की अपेक्षा किये बिना, हम अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकते थे। जय प्रकाश की इस योजना का रहस्योद्घाटन करने के लिए बहुत बड़े-बड़े ईनाम रखे गये थे। जनता आज इस बात पर विश्वास करने को तैयार नहीं है कि हम बाहरी सहायता के बिना ही ऐसा करने में सफल हुए मगर सत्य यही है। हमें इतने कम समय में बाहरी मदद नहीं मिल सकती थी और जेल में स्टाफ की मदद खतरे से भरी हुई थी। हम केवल अपने ऊपर भरोसा रखने को बाध्य थे। भागने के लिए वही समय चुना गया जब कि हमारी देख-रेख करने वाला आदमी आकर चला जाय। उसके आने-जाने में आठ मिनट लगते थे। इस लिए हमें केवल ५ या ६ मिनट में भागने का कार्य पूरा करना था।

जेल की दीवार १५ फुट के लगभग ऊँची थी। सोचना यह था कि हम में से यदि एक भी सिरे पर पहुँच जाय तो बेड़ा पार हो जाय मगर हमारे पास नहीं सीढ़ी थी न-ही कोई रस्सी। इस लिये हमें मनुष्य के कंधों की ही सीढ़िएँ बनानी पड़ीं। एक के कंधे पर दूसरे का चढ़ाना कठिन न था कारण हम प्रति-दिन यही करते थे। नयी धोतियें जो उस समय हमें मिलीं थीं, रस्सी के रूप में जोड़ कर सामने लाई गयी। उसका एक सिरा जय प्रकाश की कमर से लगा था और वह दूसरे साथी के कंधे पर खड़े थे। नीचे योगेन्द्र शुक्ल एक टेबुल पर घुठने मोड़े बैठे थे। जय प्रकाश जब दीवार के ऊपर पहुँच गये तो रस्सी का दूसरा

सिरा पकड़ कर हम में से प्रत्येक फुर्ती और मुस्तैदी के साथ दीवार पर जा पहुँचा। जय प्रकाश और हमारे लिये यह कार्य अत्यन्त सरल था। दीवार लांघ जाने के बाद हमारे एक साथी ने, जो भीतर ही था, धोतियों की रस्सी को बाहर फेंक दिया, जिसे हम लोगों ने फिर से धोतियों के रूप में बदल लिया।

जब हम दीवार लांघ रहे थे हमारे साथी भीतर नाच गा रहे थे। जो लोग हमारे इस साहसिक कार्य की जानकारी रखते थे, उनके कलेजे धड़क रहे थे— गले में कॅपकॅपाहट थी। इसी लिए हमारे भागने के लिये समय देने वाले अभिनय में भी वह नाकामयाब हो रहे थे। जो हो यह नाटक उतनी ही सफलता के साथ पूरा हुआ जितनी सफलता 'अमृत मंथन' के भव्य नाट्य में कही जा सकती है।

मुसीबत की कहानी जेल से निकल जाने के बाद आरम्भ होती है।

भागने के छः घण्टे बाद तक जेल की 'टावर' की रोशनी हमारी तलाश करती रही। दानव की आंख की तरह वह भी हमीं लोगों पर जमी पड़ी थी। खेतों, खोहों, जंगलों से हमें भागना पड़ रहा था—कभी वन-वीथियों से, कभी कमर तक बढ़ी हुई घासों के बीच से—अजीब स्थिति थी। राह का ज्ञान नहीं, नंगे पैरों मार्ग तय करना पड़ रहा था। रह-रह कर हृदय कांप उठता था, कहीं पकड़ लिए गये तो सब मन्सूबे व्यर्थ, सारी

कोशिशें बेकार। हम पल-पल आशंका लिये आगे बढ़ रहे थे। हमारा पथ-प्रदर्शन कर रहे थे, आकाश के नीरव तारे।

चार बजे प्रभात में हम थके थकाये एक पेड़ की सोरों पर बैठने को बाध्य हुये। जोरों की सर्दी पड़ रही थी और हमारे पास कपड़े बिलकुल थे ही नहीं। मेरे पास सिगरेट की एक डिबिया और दियासलाई थी। बस, लकड़ियां और फूस चुनकर मैंने आग जलाई। उस भयानक और निर्जन प्रदेश में उस दिन हम छः प्राणी उसी आग की चारो ओर बैठे रहे और थोड़ी देर बाद सो गये। बहुत देर तक सोना भी भाग्य में नहीं था। सूर्य की किरणें हमारे ऊपर आ-आ कर हमें सचेत करने लगीं कि फौज और पुलिस का घेरा हमारे पीछे लगा होगा। इसलिए हमें भागना चाहिये—तेजी से भागना चाहिए। उस समय हमारे पैरों में क्या हो गया था, आज भी हम नहीं सोच पा रहे हैं। हम बराबर भागते गए, अन्तिम घड़ियों में महसूस हुआ कि हमारे पैर छलनी हो गए हैं।

निःसंबल भागना ही हमारे भाग्य में लिखा था। ठहरा तो यह था कि जब दीवार लांघ जायेंगे तो हमारा वह साथी जो भीतर रह गया है, सामानों की गठरी बनाकर बाहर फेंक देगा मगर गठरी की प्रतीक्षा में हमें चेतावनी मिली—भागो, पहरेदार आ पहुंचा। और हम भाग चले सो भाग चले।

हां तो हमारे पास जूते और गर्म कपड़े कुछ नहीं थे, हमें केवल चलना था। पेड़ की हरी टहनियों की लाठी बनाकर,

उस पर काया का भार डालते हुए हम आगे बढ़े। अचानक ही एक तेन्दुआ गरजा–हम सबों की सिट्टी गुम, मगर खैर हुई कि वह दूसरी ओर चला गया। निभ्रांत रूप में प्रकृति हमारी मदद कर रही थी। प्रातःकाल की आभा ने जंगलों को इतना सुहावना बना दिया था कि कुछ पूछिए मत; वहीं धूनी रमा देने की इच्छा होती थी। काश, वैसा सौभाग्य मिलता मगर हमें तो आगे की ओर ही बढ़ते चलना था। दस बजे तक हम बिल्कुल थक गये, साथ ही भूख भी जोरों की लग आई। हम लोगों के पास जो कुछ पैसे थे, वह सभी गरम कोटों की जेबों में रह गये थे। मेरी कमीज की कफ़ में सौ रुपये का एक नोट सिला हुआ था जरूर मगर इस जंगल में वह एक रद्दी कागज़ के टुकड़े से अधिक महत्व नहीं रखता था। हम लोगों ने फिर अपनी जेब टटोलीं और अन्त में योगेन्द्र शुक्ल की जेब से एक चवन्नी निकल ही आई। वह चवन्नी नहीं; हमारे लिये जीवन का वरदान थी अन्यथा हम लोगों को उस निर्जन वन में भूख में तड़प कर सर्वदा के लिये सो जाना पड़ता।

योगेन्द्र शुक्ल नजदीक के गांव से थोड़ा चिउड़ा और नमक खरीद लाये। हम लोग नजदीक के झरने पर खूब डट कर नहाये। चिउड़ा और नमक को गले के नीचे उतार कर आगे चलने को बाध्य हुए तो पैरों ने साफ जवाब दे दिया। बहुत सोच-विचार के बाद हम लोगों ने एक धोती फाड़ डाली और

पैर को खूब कस कर बांध दिया। वह धोती-खंड पट्टी और जूता दोनों का ही काम देने लगा। उस अवस्था में कोई भी हम लोगों को देखता तो यही समझता कि भगोड़े ही नहीं हम लोग गड़बड़ मचाने वाले मनुष्य हैं।

कंटकाकीर्ण पथ!

क्षत-विक्षत पग और भूख से शिथिल गात। रह-रह कर हम लोग सोचते क्या हमारा स्वातन्त्र्य सन्देश इन झाड़-झंखाड़ों के पार जा सकेगा? और यदि हम में से कोई......। आखिर जिस बात की शंका थी, वही हुई। लगभग ४ बजे संध्या में जयप्रकाश—अपने पुराने रोग शूल से ग्रसित हो गए। अब हम पस्त थे। एक बार तो ऐसा लगा कि उस भयानक और निर्जन बन में ही हमारे जीवन का अन्त होगा। फिर भी हम सब वहां से ६ मील दूर अपने मित्र दुबे जी के मकान तक पहुंचना चाहते थे—जयप्रकाश किस तरह साथ चल सकेंगे, यही भारी परेशानी थी। संयोग से उसी समय एक बैलगाड़ी उधर से आई, हम लोगों ने गांव तक पहुंचाने की प्रार्थना की—उसने तीन रुपये मांगे। उत्फुल्ल हृदय हम लोगों ने पहुँचाने के बाद और भी अधिक देने का वायदा कर दिया मगर उसे चाहिये थे नकद रुपये। मेरे पास कलाई-घड़ी थी, मैं उसे देने लगा। इस पर उसका सन्देह और बढ़ गया फिर तो सारी प्रार्थनाएँ, सारे निवेदन एक दम व्यर्थ। गाड़ीवान हमारी कुछ सुने बिना ही आगे बढ़ गया।

निराश होकर हम फिर जयप्रकाश के पास आये, वहीं जहां उन्हें जंगल में छोड़ दिया था। सोच लिया आज की भयानक रात यहीं बितानी है। हम लोगों ने फिर आग जलाई और उसके चारों ओर पांत बांध कर बैठ गये। बिना जूता पैदल चले, बिना खाये इतनी दूर निकल आये मगर अब क्या होगा? इधर जयप्रकाश का भयानक दर्द और हम लोगों की घोर विवशता। हाथ पर हाथ रख कर बैठने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। सोच रहे थे कि सम्भवतः प्रकृति जयप्रकाश को कुछ सहारा दे।

आखिर प्रभात हुआ। जिस स्थान पर थे, वहीं जमे रहने का अर्थ था निश्चित रूप से मृत्यु या पुलिस के हाथों अपने को सौंप देना। हमें दुबे जी के गांव पहुँचना था और वहीं से अपनी स्थिति बनानी थी। इस लिए हम जय प्रकाश को ढोने के निश्चय पर पहुँचे। बारी-बारी से जोड़े लगते। इस कार्य में योगेन्द्र शुक्ल के पहलवानी शरीर ने बड़ा सहारा दिया।

धीरे-धीरे हम बस्ती के निकट आ गये। अब सामने छोटे-छोटे पुरबे पार करने थे—हम लोगों ने जन सम्पर्क को बचाते हुए चलना ठीक समझा—जिसमें किसी को सन्देह का अवसर नहीं मिले। दस बजते-बजते हम लोग बिलकुल थक गये और आगे बढ़ने की हिम्मत भी छूट गई। बात यह थी कि करीब दो घंटे से गांव वाले बताते जाते थे, अब पहुँचे, तब पहुँचे, निकट बहुत निकट ही वह गांव है फिर भी वह गांव दूर ही

रहा। अब तक जयप्रकाश ही अशक्य थे, सम्प्रति मेरी बारी भी आ गई। एक पेड़ के नीचे हमें बैठा कर शेष साथी आगे बढ़े। एक घंटे की तलाश के बाद आखिर वह कामयाब हुए और खाने के लिए भोजन और पैसे लाये। सौ रुपये का नोट भुन गया। अन्यान्य सामानों में सब से बढ़िया सामान थे—तीन जोड़े फटे-पुराने जूते। यहीं पहले-पहल हम सुरक्षित जान पड़े और हमारे चेहरों पर खुशी की चमक आई।

दोपहर से संध्या तक—नहीं कुछ रात तक हम लोगों-ने आराम किया, सोये और बातें कीं। यहीं हमें एक बैलगाड़ी मिली मगर उस पर दो से अधिक के बैठने की गुञ्जाइश नहीं थी। बहर हाल जयप्रकाश और मैं गाड़ी पर चले और शेष साथी पैर घसीटते आगे बढ़े।

गाड़ी हम लोगों को जंगल के बीच से ले चली। आधी रात के समय गाड़ीवान ने बताया कि हम लोग गया और हजारी बाग की सीमा पर हैं। धड़कते हुए हृदय से एक घंटे में हम सीमा लांघ गये और यहीं उस विश्वस्त और ऐतिहासिक बैल गाड़ी ने हमारा साथ छोड़ दिया। हम उतर गये। आराम करने का निश्चय हुआ—अग्नि-सेवन के साथ अपना सामान भी सँभाला अच्छी तरह। हमारे पास था थोड़ा सा भोजन, थोड़े से पैसे, फटा-पुराना जूता, और चिथड़े चिथड़े हो रहे कपड़े, यही तो हमारा सामान था। कहने को हम उस समय परम दरिद्र थे पर इसकी परवाह हमें नहीं थी। निश्चय ही उस समय

हम शाहंशाह थे। हमारे चेहरों पर खुशी का रंग था—हम कैदी नहीं स्वतन्त्र थे। यहां हम निर्भय हो कर सोये—भूत और भविष्य की कल्पना से बहुत दूर—शान्त चित्त होकर सोये। अब हजारी बाग जेल को चुनौती देकर हम आगे निकल चुके थे।

जय प्रकाश के हाथ से निकल जाने के बाद, जेल अधिकारियों ने अत्यन्त उग्ररूप धारण किया और रहे-सहे चार साथियों पर नाना प्रकार के जुल्म ढाये। इस घटना के बाद जय प्रकाश की धर्म पत्नी श्री प्रभावती को, जो दूसरे जेल में थी, रात में बंद कोटरी में ही सोने का आदेश दिया गया।

बिहार की नौकर शाही और जय प्रकाश की टोली के बीच चलने वाली होड़ में दूसरा पक्ष ही अपनी दूर दर्शिता, अनुभव और कार्य संलग्नता के कारण विजयी हुआ। पुलिस की गारदें जंगल की ओर भगोड़ों को पकड़ने को भागी, वायुयान के सहारे जंगल की छानबीन की गई मगर नौकर शाही के समस्त प्रयास निष्फल ही गए। जय प्रकाश उसकी पहुँचसे बाहर हो चुके थे।

जय प्रकाश पैदल ही यात्रा करते हुए गया और आरा पार कर पंद्रह दिनों के बाद बनारस पहुँचे, वहां आपने कुछ साथियों से भेंट की। इस यात्रा में उन्हें महान् कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और शरीर भी कमजोर हो गया। उनकी दाढ़ी भी काफी बढ़ गई थी। अपनी इस यात्रा के समय उन्हें दूकानदारों-फेरीवालों के साथ रहना पड़ा और नदी में स्नान करना पड़ा।

वह अपने हाथ में डंडा लिए हुये ठेठ देहाती जैसे प्रतीत होते थे। घुटनों के ऊपर तक बंधी हुई धोती वह भी निपट मैली, लम्बी बाहों का लंबा कुर्ता और शिर पर मैली चादर का पग्गड़, उनके देहातीपने में चार चांद लगा देते थे। अक्सर ग्रामीण लोग उनसे ऐसे प्रश्न पूछते, जिनका उत्तर देना उनके लिए मुश्किल पड़ जाता। वह उनका नाम, पिता का नाम, पेशा आदि ऐसे प्रश्न बिना किसी उद्देश्य के पूछते, जिनका उत्तर खतरे से खाली नहीं कहा जा सकता था।

इस प्रकार जय प्रकाश नगर-नगर घूमते फिरे—श्रमिकों से मिले, उन्हें संगठित कर '४२ की क्रांति की ज्वाला को अत्यधिक विकराल बनाते रहे। दो महीने के बाद उनके शरीर पर युरोपियन ढंग के वस्त्र सुशोभित हो गए। वह कभी-कभी सलवार पहनते और अपना नाम 'रहमान' बताते थे। कई महीनों तक फरार रहना और खुफिया पुलिस की आंखों में धूल झोंकते हुए क्रांति का संचालन करते रहना जय प्रकाश की अपनी क्रांतिकारी विशेषता थी। नेताजी भारत गौरव सुभाष और युवक सम्राट जय प्रकाश भारतीय इतिहास की दो क्रांति कारी विभूतिएँ हैं। उनमें आवश्यकतानुसार विभिन्न तत्वों का विभिन्न रूप से उपयोग कर सकने का अनुपम गुण है। निश्चित रूप में कहने दीजिये—जयप्रकाश ने पुलिस और आई० सी० एस० के सदस्यों का भी अच्छे परिमाण में उपयोग किया। उन सबों ने समय-समय पर उनकी काफ़ी मदद की।

आजाद दस्तों का संगठन

ब्रिटिश-भारत में कुछ काल तक रहने और क्रान्तिकारी आन्दोलनों का संचालन करते रहने के कारण जयप्रकाश के सामने कुछ ऐसी कठिनाइयां भी आ पड़ीं, जिनको लेकर उनका यहां रहना कठिन हो गया। अन्ततोगत्वा उन्होंने नेपाल को अपने लिए उपयुक्त क्षेत्र समझ वहां से ही क्रान्ति का संचालन करते रहने का निश्चय किया। उस समय वह कलकत्ता पहुँच चुके थे और वहीं से अपने साथियों के साथ नेपाल रवाना हुये। नाव द्वारा कोसी नदी पार की गई। पहले तो अपने एक साथी के यहां कुछ काल तक मेहमान रहे फिर जंगल में दीवानों की कुटिया बनी। साथियों में एक सज्जन डाक्टर भी थे, उन्हें कुछ औषधियां प्राप्त कर और गांव वालों में उन्हें वितरण कर उनका सौहार्द्र अपनाने का भार दिया गया। धीरे-धीरे क्रान्तिकारी कार्यों का आरम्भ हुआ और 'गुरिल्ला' दल आ-आकर जयप्रकाश का नेतृत्व स्वीकार करने लगा। १७ अप्रैल को आजाद दस्ता का संगठन हुआ। इसके अधिकांश अफसर और निर्देशक भारतीय सेना के पूर्व अफसर और सैनिक थे। इस

फौज का उद्देश्य आन्दोलन को सक्रिय रूप से चलाना और नेताजी सुभाष के नेतृत्व में भारत पर चढ़ाई होने के अवसर में उनकी उचित सहायता करना तथा जनता में विद्रोह की भावना भरना था। उन्हें विश्वास था, जिस समय आसाम की सीमा से आजाद हिन्द फौज आक्रमण करेगी, और उनके गुरिल्ले—आजाद दस्ते वाले सैनिक कार्य करेंगे और जनता भी विद्रोहिणी बन जायगी, उस समय विदेशी सत्ता का टिकना एक क्षण के लिए भी सम्भव न होगा। उनकी फौज के चिह्न 'तीन तारे' थे और ध्येय 'स्वाधीनता, भोजन और अखंड राष्ट्र' था। उनकी भावनाओं का स्पष्टीकरण—उनके प्रयाण गीत के प्रथम पंक्ति से ही हो जाता है—पहाड़ी भाषा के उस प्रयाण गीत की प्रथम पंक्ति का भाव है—'जीवन क्रान्ति मे पूर्ण है, उसे हमें क्रान्ति में ही लगाना चाहिये।'

नेपाल सरकार सम्भवतः नेपाल में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों को जानती थी, फिर भी उसने कोई हस्तक्षेप करना ठीक नहीं समझा। बाद में ब्रिटिश सरकार द्वारा उकसायी जाने पर, वहां की सैनिक पुलिस ने जयप्रकाश और उनके साथियों को गिरफ्तार कर लिया। ऐसा जान पड़ने लगा कि सारा खेल खत्म होने को आया और जयप्रकाश अपने साथियों के साथ पुनः किसी काल कोठरी में डाल दिये जायेंगे। यह दूसरी बार की परीक्षा थी, जयप्रकाश की बुद्धिमानी ने एक बार फिर अपना चमत्कार दिखाया।

जयप्रकाश गिरफ्तार कर हनुमान नगर ले जाये जा रहे थे, राह में उन्हें किसी दोस्त से मिलने की सूझी। वह बातें कर ही रहे थे कि एक युवक अश्रु पूरित नेत्रों से उनके पास आकर कहने लगा—'काश, हम आपकी रक्षा कर पाते ?'

जयप्रकाश को सैनिकों ने दोस्त से मिलने का अवसर नहीं दिया फिर भी उस युवक से उनका काम पूरा हो गया। उन्होंने उससे कहा—मेरे साथी अधीर मत हो, यह रोने का समय नहीं है—न-ही इससे कुछ लाभ ही है। जल्दी करो, और हेड क्वार्टर पहुंच कर कमांडर सूर्यनारायण से कहो कि समस्त गुरिल्ला सैनिकों को एकत्र कर—ज्योंही नेपाली पुलिस हमें ब्रिटिश पुलिस के हवाले करे—वह हमला कर दें। वह युवक ७० मील दूर पहाड़ी पर अवस्थित सदर दफ्तर पहुँचा और सारी सूचना कमाण्डर को दे दी। पूरी तैयारी के साथ गुरिल्ला सैनिक अपने प्रिय जयप्रकाश को बन्धन मुक्त करने के लिये पागे बढ़े।

हनुमान नगर-जेल में पहुँचा कर—सैनिकों ने समझ लिया कि अब जयप्रकाश और उनके साथी कहीं भाग नहीं सकते। कुछ सैनिक इन स्वतन्त्रता के संदेशवाहकों की रक्षा का बीड़ा उठा कर पहरे पर डट गये और शेष आराम से खर्राटे भरने लगे। जिस दिन जयप्रकाश को छुड़ाया जाना था, उनके पास उसकी सूचना भेज दी गई। उन्हें विश्वास दिला दिया गया कि विशेष चिन्ता की जरूरत नहीं है।

निश्चित योजना के अनुसार रात में गुरिल्ला योद्धाओं ने

बन्दूकों की आवाज से हनुमान नगर के शान्त वातावरण को शब्द पूरित बना दिया। जयप्रकाश इस घटने वाली घटना से अवगत, फर्श पर शान्त सिन्धु की तरह बैठे थे। गुरिल्ला सैनिकों ने पुलिस को वास्तविकता से अनभिज्ञ बनाये रखने के लिये पास की कुछ झोंपड़ियों में आग लगा दी। तार तो पहले से ही काट दिये गए थे, जिससे काठमांडू तक कोई समाचार न भेजा जा सके। सुप्त प्रहरी चौंक पड़े, सोचा—खजाने पर आफत आई। वह ज्योंही बन्दूकें सँभालने को उठे, जयप्रकाश के गुरिल्ला सैनिकों का हमला हुआ और पहरेदारों की रायफलें छीन ली गईं। इस हमले में एक प्रहरी काम आया।

जयप्रकाश को प्रहरी की मृत्यु से महान दुःख हुआ—मगर उपाय क्या था ? वह अवसर ही कुछ सोचने-विचारने का नहीं था। बाद में सन्तरी के परिवार के लिये उन्होंने सारी आर्थिक व्यवस्थायें कर दीं।

हनुमान नगर-जेल से भागते समय डा० राम मनोहर लोहिया की अलमस्त स्थिति से क्षण भर को जो दुःखद प्रसंग पैदा हो गया था—उसकी स्मृति जयप्रकाश को सदा ही रहेगी। गुरिल्ला सैनिक उन्हें बाहर करने की मुस्तैदी बरत रहे थे और वह अपनी पैसे की आंख—चश्मा की खोज में व्यग्र थे। जयप्रकाश को राह में पता चला कि डाक्टर साहब साथ में नहीं हैं। वह व्याकुल हो उठे—'कहीं उसी लड़ाई में मारे तो नहीं गये।'

मिलने पर तो खासा मजाक रहा—इस विषय पर सभी घंटों लोट-पोट होते रहे।

इस घटना के बाद जय प्रकाश अपने साथियों के साथ शीघ्र ही नैपाल की सीमा से बाहर हो गए। दरभंगा, भागलपुर आदि स्थानों में विचरते हुए वह कलकत्ता पहुंचे। इस यात्रा में पुनर्वार वह चक्कर में फँसते-फँसते बचे।

नैपाल छोड़ते हुए जय प्रकाश ने एक पत्र लिखकर नैपाल नरेश को उन सारी बातों से अवगत ही नहीं कराया, प्रत्युत यह विश्वास दिलाया कि नैपाल राज्य के खिलाफ वह कोई कार्य नहीं कर रहे थे। जो भी किया जा रहा था, उसका अर्थ एक सेना संघटित कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मोर्चा लेना था।

स्वतंत्रता के समस्त सैनिकों के नाम दो पत्र जय प्रकाश ने नैपाल प्रवास में ही, प्रचारित किए। जिनमें एक पत्र नौकरशाही सरकार की दृष्टि में अत्यन्त ही खतरनाक माना गया। भारत-सरकार के तत्कालीन प्रकाशन विभाग ने उक्त पत्र को जय-प्रकाश के विप्लवी होने के प्रमाण में प्रकाशित किया था।

आप भी उसे देखिये—

जय प्रकाश का विप्लवी संदेश

साथियो,

सबसे पहले मैं आपको तथा उन साथियों को, जो युद्ध बन्दी हो गये हैं, शत्रु से भारी मोर्चा लेने के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ। हमारे इस चिर-पीड़ित तथा दलित देश में ऐसी कोई लड़ाई पहले कभी नहीं हुई और न ही होने की आशा थी। वास्तव में यह वही "खुला विद्रोह" था जिसका आयोजन हमारे बेजोड़ नेता महात्मा गांधी ने किया था।

फिलहाल तो यह विद्रोह निस्सन्देह, दबा दिया गया दिखाई देता है। मुझे आशा है कि आप मेरे इस विचार से सहमत होंगे कि यह केवल कुछ समय के लिए ही दबाया गया है। इससे हमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। सच तो यह है कि यदि पहला ही प्रहार सफल हो जाता और उससे साम्राज्य-वाद पूर्णतः नष्ट हो जाता, तब वह आश्चर्य की बात होती। शत्रु ने स्वयं ही यह स्वीकार किया है कि इस विद्रोह से उसकी सत्ता नष्ट होते-होते बच गई। इसी से प्रगट होता है कि हमारी राष्ट्रीय क्रांति का प्रथम अध्याय कितना सफल रहा।

और प्रथम अध्याय को किस प्रकार दबाया गया ? क्या यह शत्रु की सैन्य-शक्ति, गुण्डा शाही का बढ़ता हुआ दौरदौरा, लूटपाट, अग्नि और हत्या के काण्ड थे जिन्होंने यह कार्य किया ? नहीं। यह समझना गलत है कि "विद्रोह" को "दबा दिया" गया है। सभी क्रांतियों के इतिहास से पता चलता है कि क्रांति कोई घटना विशेष नहीं होती। यह तो एक अध्याय, एक सामाजिक क्रम का नाम है। और फिर क्रांति के विकास में उतार-चढ़ाव स्वाभाविक ही है। इस समय हमारी क्रांति उन्नत होकर विजय पर विजय प्राप्त करने के बजाय जल्दी से उतार पर चलने लगी है, इसलिए नहीं कि साम्राज्यवादी आक्रान्ताओं ने अपने अधिक शक्तिशाली पार्थिव बल का प्रयोग किया है, बल्कि इसके दो महत्वपूर्ण कारण है।

पहले तो राष्ट्रीय क्रांतिकारी शक्तियों का कोई कुशल संगठन नहीं था जो कार्य करता रहता और उन प्रभावपूर्ण शक्तियों का सञ्चालन करता, जिनका विकास हो गया था। यद्यपि कांग्रेस एक विराट सङ्गठन है, फिर भी वह उस सामा तक तैयार न था, जिस तक कि इस क्रांति को पहुंचाना था। सङ्गठन की इतनी भारी कमी थी कि महत्वपूर्ण कांग्रेसजन भी इस की प्रगति से अनभिज्ञ रहे और क्रांति की प्रारम्भिक अवस्था में बहुत से कांग्रेसी क्षेत्रों में काफी देर तक यह विवाद ही का विषय रहा कि जो कुछ जनता कर रही है, क्या वास्तव में वह कांग्रेस के कार्य क्रम के अनुसार ही है ? इस सम्बन्ध में

यह शोचनीय बात उल्लेख करने योग्य है कि पर्याप्तसंख्यक प्रभावशाली कांग्रेसजन अपनी मनोवृत्ति को इस "स्वतन्त्रता के लिए अन्तिम लड़ाई", की भावना के धरातल तक न उठा सके। महात्मा गांधी, डा० राजेन्द्र प्रसाद या सरदार पटेल जैसे नेताओं के दृष्टिकोण में जो तत्परता, आवश्यकता और दृढ़ निश्चय दिखाई देते थे, उनका समस्त कांग्रेस नेताओं के मस्तिष्क और हृदय पर प्रभाव नहीं पड़ा।

दूसरे, जब क्रान्ति का प्रथम अध्याय समाप्त हो गया तो जनता के सम्मुख कोई आगे का कार्यक्रम नहीं रखा गया। लोगों ने अपने क्षेत्रों में ब्रिटिश राज को पूर्णतः छिन्न-भिन्न कर देने के बाद, यह समझ लिया कि उनका कार्य समाप्त हो गया है और वे अपने घरों को यह सोचे बिना चले गये कि उन्हें और क्या करना है ? यह उनका दोष नहीं था। गलती तो हमारी थी। दूसरे अध्याय के लिये उनके सम्मुख हमें कार्यक्रम प्रस्तुत करना चाहिये था। जब यह नहीं किया गया तो विद्रोह गतिहीन हो गया और उतार का रूप प्रारम्भ हो गया। विद्रोह की धीमी गति को और अधिक शिथिल बनाने के लिये जब पर्याप्त संख्या में अंग्रेज-सैनिक आये तो इससे कितने ही दिन पहले यह स्थिति उत्पन्न हो गई थी। दूसरे अध्याय में जनता के सम्मुख क्या कार्यक्रम उपस्थित करना चाहिए था ? इसका उत्तर इसी से दिया जा सकता है कि क्रान्ति किस प्रकार की होती है ? क्रान्ति एक विनाशात्मक क्रिया ही नहीं बल्कि

साथ ही एक विशाल रचनात्मक शक्ति भी होती है। कोई भी क्रान्ति सफल नहीं हो सकती यदि वह केवल विनाशात्मक ही है। यदि उसे जीवित रहना है तो, नष्ट की गई सत्ता के स्थान में उसे नई सत्ता को जन्म देना चाहिये। हमारी क्रान्ति को भी देश के विस्तृत क्षेत्रों में विनाशात्मक कार्य को पूरा करने के बाद रचनात्मक कार्यक्रम की आवश्यकता थी। जिन लोगों ने विदेशी सत्ता के उन साधन और लक्ष्यों को नष्ट कर दिया, जिनके द्वारा वह शासन करती थी और उसके अधिकारियों को भगा दिया तो उनको चाहिये था कि अपने-अपने क्षेत्रों में वह क्रान्तिकारी सरकार के दल स्थापित करते और अपनी पुलिस और सेना को जन्म देते। यदि ऐसा कर दिया जाता तो इससे अभूतपूर्व मात्रा में शक्ति उपलब्ध हो जाती और रचनात्मक कार्य के लिये इतना विस्तृत क्षेत्र प्राप्त हो जाता कि क्रान्ति की लहरें उत्तरोत्तर ऊपर उठती चली जातीं; और—यदि वह क्रांति देशव्यापी होती—तो अन्त में साम्राज्य शाही सत्ता छिन्न-भिन्न हो जाती और समस्त देश की सर्वोच्च सत्ता जनता के हाथ आ जाती।

कुशल सङ्गठन तथा राष्ट्रीय क्रांति के पूर्व कार्यक्रम का अभाव, वर्त्तमान क्रांति के प्रथम अध्याय में शिथिलता आ जाने के यह दो कारण थे।

अब प्रश्न यह है कि हमारे सम्मुख क्या कार्य है? पहले तो हमें अपने और जनता के मन से खिन्नता को निकाल देना

चाहिए और इसके स्थान पर प्राप्त सफलता की प्रसन्नता और भावी सफलता की आशा का एक वातावरण उत्पन्न करना चाहिए।

दूसरे, यह क्रांति किस प्रकार की है इस बात को हमें अपने और जनता के मस्तिष्क के सम्मुख अविचल रूप से रखना चाहिए। स्वतंत्रता के लिए यह हमारी अन्तिम लड़ाई है। अतः हमारा उद्देश्य विजय प्राप्त करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। इस में समझौते की कोई गुंजाइश नहीं है। राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए राजगोपालाचारी जैसे व्यक्ति जो प्रयत्न कर रहे हैं, वह केवल निष्फल ही नहीं बल्कि उस अंश तक निश्चित रूप से हानिकर भी है जिस अंश तक वे जनता के ध्यान को वास्तविक समस्या से दूर ले जाते हैं। "भारत-छोड़ो" और "राष्ट्रीय सरकार" के नारों के बीच कोई समझौता नहीं हो सकता। जो लोग कांग्रेस और लीग की एकता के नारे पर जोर दे रहे हैं, वह साम्राज्य शाही प्रचार मे सहायता पहुँचा रहे हैं। राष्ट्रीय सरकार की स्थापना में एकता का अभाव अड़चन नहीं डाल रहा है बल्कि साम्राज्य की सत्ता त्यागने की स्वभाविक अनिच्छा अड़चन डाल रही है। श्री चर्चिल ने इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रखा। जब उन्होंने हाल ही में कहा कि साम्राज्य का दिवाला निकालने के लिये मैंने सम्राट के प्रधान मंत्री का पद ग्रहण नहीं किया है। वह समाज का मूर्ख विद्यार्थी है जो यह आशा करता है कि साम्राज्य अपने आप विलीन हो

जाते हैं। वे भूतपूर्व "क्रान्तिकारी" जो विनम्र स्मारकपत्रों की प्रलयकारी शक्ति द्वारा भारत को साम्राज्यवाद से मुक्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं, वे अपने आपको इतिहास के सबसे अधिक दयनीय मूर्ख बना रहे हैं।

साम्राज्यशाही के शब्द-जाल के अनुसार सामयिक आवश्यकता भारतीय जीवन के महत्वपूर्ण अंगों में एकता की नहीं है, बल्कि राष्ट्र की समस्त क्रान्तिकारी शक्तियों के एकीकरण की है। और कांग्रेस के झंडे के नीचे इनका एकीकरण पहले ही हो चुका है। कांग्रेस और लीग की एकता से इन शक्तियों में वृद्धि होने की संभावना नहीं है किन्तु इनके और भी पिछड़ जाने की संभावना है, कारण लीग संभवतः क्रान्ति और स्वतंत्रता के मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकती।

तब, साम्राज्यवाद को समूल नष्ट करना ही हमारा उद्देश्य है और इसको अविचल रूपसे हमें अपने ध्यानमें रखना चाहिए। इस प्रश्न पर कोई समझौता नहीं हो सकता। या तो हम विजयी होंगे या पराजित हो जायंगे। और पराजित तो हम होंगे नहीं। केवल इसीलिए नहीं कि हमने विजय प्राप्ति के लिए निरन्तर कार्य करने का संकल्प कर लिया है बल्कि इसलिए भी कि संसार की प्रभावशाली शक्तियां साम्राज्यवाद और फासिस्टवाद के विनाश को, दिनपर-दिन अधिक निकट ला रही है। यह विश्वास न करिये कि शान्ति सम्मेलन में परिश्रम के साथ इस युद्ध के जो परिणाम निश्चित किये जायंगे वह युद्धोत्तर कालीन

संसार के भाग्य का भी निपटारा कर दगे। युद्ध एक विचित्र रसायनज्ञ है और इसके गुप्त कमरों में ऐसी शक्तियां सूक्ष्म-रूप में विद्यमान है जो विजयी तथा विजित दोनों की योजनाओं का समान रूप से धूल में मिला देती हैं। गत महायुद्ध की समाप्ति के बाद किसी भी शान्ति सम्मेलन ने यह निश्चय नहीं किया था कि यूरोप और एशिया के चार विशाल साम्राज्य—रूसी, जर्मन, आस्ट्रियन तथा ओटामन—धूल में मिल जायंगे। न ही रूसी, जर्मन, और तुर्क क्रान्तियां लायड जार्ज, क्लिमेंश्यू या विल्सन द्वारा निर्धारित की गयी थीं।

समस्त संसार में, जहां लोग लड़ रहे हैं, मर रहे हैं और संकट झेल रहे हैं, रसायनज्ञ अपना काम कर रहा है, जैसा कि वह भारत में कर रहा है, जहां उसने पहले ही विशाल सामाजिक क्रान्ति फैला दी है। वर्तमान युद्ध की समाप्ति के बाद चर्चिल, रूजवेल्ट, हिटलर और तोजो, इनमें से कोई भी संसार के भाग्य का निर्णय न करेगा। ऐसी शक्तियां जिनका हम प्रतिनिधित्व करते हैं, इस ऐतिहासिक कार्य को पूरा करेंगी। क्या इसमें हम सन्देह कर सकते हैं कि क्रान्तिकारी शक्तियां सर्वत्र जागृत हो रही है? क्या हम विश्वास कर सकते हैं कि भविष्य के सम्बन्ध में सोचे-विचारे बिना लाखों आदमी अकथ कष्ट उठा रहे हैं? क्या हम विश्वास कर सकते हैं कि लाखों व्यक्ति उन असत्य बातों से सन्तुष्ट है जो उनके शासक उनको नित्य बताते हैं? नहीं ऐसा नहीं हो सकता।

इसलिए पूर्ण विजय के उद्देश्य पर निश्चित रूप से अपनी दृष्टि जमाकर, हमें आगे बढ़ना है। ठोस रूप से हमें क्या करना चाहिए ? जब एक जनरल लड़ाई में हारता है या जीतता है तो वह क्या करता है ? वह शक्ति को संगठित करता है और दूसरी लड़ाई के लिए तैयारी करता है ? संगठन और तैयारी करने के लिये रोमेल भारी विजय प्राप्त करने के बाद, अल-अलामीन पर ठहर गया। अलेक्जेंडर ने भी तैयारी की और उसने अपनी भारी पराजय को प्रसंशापूर्ण विजय में परिणत कर दिया। हमारी तो यह पराजय भी नहीं है। वास्तव में हमने लड़ाई के पहले दौर में विजय प्राप्त की, क्यों कि हमारे देश के विस्तृत क्षेत्र में आक्रान्ता अंगरेजों की शासन प्रणाली का पूर्णतः उन्मूलन कर दिया गया। जनता ने अब यह अनुभव से जान लिया है कि जब वह सामूहिक शक्ति से आक्रमण करती है तो पुलिस, मजिस्ट्रेटों, अदालतों और जेलों का बना हुआ भव्य-भवन—जो बृटिश राज के नाम से प्रसिद्ध है—कागजी घर के समान सिद्ध होता है। इस सबक के भूलने की संभावना नहीं है और दूसरे आक्रमण के लिए यह पहला मोर्चा होगा।

इसलिये इस समय हमें तीसरा और सबसे महत्वपूर्ण आगामी भारी आक्रमण के लिए तैयारी करना है। शायद, संगठन और अपने को अनुशासन में रखना भी—इस समय हमारे मूलमंत्र हैं।

अगला आक्रमण ? अगला आक्रमण प्रारम्भ करने की हम

कब आशा करें ? कुछ लोगों का विचार है कि आगामी ५ या ६ साल तक जनता फिर विद्रोह करने के लिए तैयार न होगी। शान्तिकाल में यह अनुभव ठीक हो सकता है, लेकिन तूफानी युद्ध-पीड़ित संसार पर, जिसमें घटना-चक्र तेजी से चल रहा है, यह लागू नहीं होता। अंग्रेज तानाशाहों - लिनलिथगोओं' हैलेटों, स्टयूर्टों तथा ऐसे ही अन्य हजारों लोगों और नीच भारतीय नौकरशाही—के पाशविक अत्याचार से जनता शायद इस समय भले ही दब गयी हो. लेकिन उसको अत्याचारियों का मित्र बनाने में उन्हें कहीं भी सफलता नहीं मिली है। समस्त देहाती क्षेत्रों में जहां अंग्रेजों ने अपने ढग से नाजियों जैसे पैशाचिक अत्याचार किये थे, अत्यधिक तीव्र असन्तोष क्रोध, और प्रतिकार की पिपासा तीव्र रूप से फैली हुई है। जनता को केवल यह जानना है कि फिर आक्रमण करने तथा आगामी आक्रमण की योजनाओं को क्रियात्मक, सम्मिलित और अनुशासनपूर्ण ढंग से कार्यान्वित करने के लिए जोरदार तैयारी की जा रही है। आगामी आक्रमण के लिए यह पूर्णतः हितकर होगा। अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से भी हमें सहायता मिल सकती है। इसके बाद गांधी जी का आमरण अनशनव्रत है, जो वे किसी भी समय कर सकते हैं। यह हमें तथा लोगों को निरन्तर स्मरण कराता है कि हम और वह शिथिल न पड़ें, विचलित न हों और विश्राम न करें।

आगामी आक्रमण का प्रश्न क्रान्ति के रचनात्मक कार्य के प्रश्न—अर्थात् क्रान्तिकारी सरकार की शाखाएं स्थापित करना—

से सम्बद्ध है पिछले प्रश्न से हिंसा और सशस्त्र सेनाएँ रखने का प्रश्न सम्बन्धित है। इसलिए इस प्रश्न के सम्बन्ध में मैं अपना मत आपके सम्मुख प्रस्तुत करना चाहता हूं, क्योंकि मेरे विचार में हमारी क्रान्ति के भविष्य में इसका गहरा सम्बन्ध है।

सब से पहले, मैं अनुभव करता हूँ कि ब्रिटेन की सरकार ने इस क्रान्ति के समय किये गये हिंसात्मक कार्यों के सम्बन्ध में जो शोर मचाया है, उसके बारे में कुछ शब्द कहूँ। अत्यधिक उत्तेजना दिलाने पर कुछ हिंसात्मक कार्य अवश्य किये गये थे, लेकिन विद्रोह की विशालता और वैयक्तिक तथा सामूहिक अहिंसा के आश्चर्य जनक प्रयोग की तुलना में वह नगण्य है। शायद यह अनुभव नहीं किया गया है कि विदेशी सत्ता के हजारों अंग्रेज और भारतीय कर्मचारियों का जीवन कुछ दिनों तक जनता की दया पर निर्भर था। जनता ने अपने शत्रुओं पर दया की और उनका जीवन तथा सम्पत्ति बख्श दी। और उन हजारों वृद्धों और नवयुवकों के शान्त और दिव्य साहस के सम्बन्ध में क्या कहना है जिन्होंने हाथ में क्रान्ति का झंडा लिए और मुँह से "इन्कलाब जिन्दाबाद" का नारा लगाते हुए अपने सीने में शत्रु की गोलियां खाईं। क्या इस दैवी उत्साह के लिए अंग्रेजों के पास कोई प्रशंसा का शब्द है?

किसी भी स्थिति में, क्या यह उल्लेखनीय नहीं है कि ब्रिटिश सत्ता जो हिंसा से ओत-प्रोत है, जो हिंसा पर आधारित है, जो प्रतिदिन अत्यधिक क्रूरतापूर्ण हिंसात्मक कार्य करती है,

जो लाखों व्यक्तियों को पीसती है और उनका खून चूसती है, दूसरों के हिंसात्मक कार्यों पर इतना शोर मचाये। इससे अंग्रेजों का क्या सम्बन्ध है कि उनसे लड़ने के लिए हम किन शस्त्रों का प्रयोग करते हैं? क्या उन्होंने यह प्रतिज्ञा करली है कि यदि विद्रोही अहिंसात्मक रहे तो वे भी अहिंसात्मक नीति का पालन करेंगे? हम चाहे किन्हीं शस्त्रों का प्रयोग करें अंग्रेजों के पास तो हमारे लिए गोलियां, छूटमार, बलात्कार और अग्नि-कांड ही हैं। इसलिए इस सम्बन्ध में उनको मौन ही रहना चाहिए कि हम उनके विरुद्ध किस ढंग से लड़ते हैं। इसका निश्चय करना एकमात्र हमारा ही काम है।

इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि इसका हम पर क्या प्रभाव पड़ता है, पहले मैं आपको अहिंसा के सम्बन्ध में एक ओर गांधी जी और दूसरी ओर कार्यसमिति तथा अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति के विचारों में जो मतभेद है उसका स्मरण कराऊंगा। गांधी जी किसी भी स्थिति में अहिंसा से विचलित होने के लिए तैयार नहीं है। उनके लिए यह प्रश्न विश्वास और जीवन सिद्धान्त का है। लेकिन कांग्रेस के लिए ऐसा नहीं है। तभी कांग्रेस ने इस युद्ध के बीच बार-बार यह कहा है कि यदि भारत स्वतन्त्र हो गया या यदि राष्ट्रीय सरकार की स्थापना भी हो गयी तो वह शस्त्रों से आक्रमण का विरोध करने के लिए तैयार हो जायगी। लेकिन, यदि हम शस्त्रों का प्रयोग करके जापान और जर्मनी के विरुद्ध लड़ने को तैयार हैं।

तब हमें ब्रिटेन के विरुद्ध लड़ने में उसी ढंग का प्रयोग करने से क्यों इन्कार करना चाहिए? इसका केवल यही उत्तर हो सकता है कि सत्ता युक्त कांग्रेस सेना रख सकती है, परन्तु सत्ता-हीन कांग्रेस नहीं रख सकती। लेकिन यदि क्रान्तिकारी सेना की स्थापना की गयी या यदि वर्तमान भारतीय सेना या इसका एक भाग विद्रोह करदे तो क्या यह हमारे लिए असंगत नहीं होगा कि पहले तो हम सेना से विद्रोह करने के लिए अनुरोध करें और इसके बाद विद्रोहियों से यह कहें कि वह हथियार रखदें और नग्न सीने से अंग्रेजों की गोलियों का सामना करें?

कांग्रेस की—गांधी जी की नहीं—स्थिति के सम्बन्ध में मेरी निजी व्याख्या स्पष्ट और निश्चित है। यदि देश स्वतन्त्र हो गया तो कांग्रेस हिंसात्मक रूप से आक्रमण का सामना करने के लिए तैयार है। अच्छा, हमने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया है और ब्रिटेन को आक्रान्ता राष्ट्र भी करार दे दिया। फलतः बम्बई प्रस्ताव के अन्तर्गत ब्रिटेन से सशस्त्र लड़ना हमारे लिए उचित है। यदि यह गांधी जी के सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं है तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं। कार्यसमिति और अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति ने गांधी जी के मत से भिन्न मत प्रगट किया है और अहिंसा का युद्ध में प्रयोग करने के सम्बन्ध में जो उनकी धारणा है उसका अस्वीकार किया है। अंग्रेजी सत्ता ने इस प्रस्ताव को उचित रूप देने तथा नेतृत्व करने के लिए गांधी जी को अवसर नहीं दिया। इसलिए

व्याख्या का अनुसरण करते हुए हमें गांधी जी के प्रति झूठा नहीं बनना चाहिए। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं अनुभव करता हूँ कि एक खरे कांग्रेसी की हैसियत से—मेरे समाजवाद को इस प्रश्न से असम्बद्ध रखते हुए—यदि मैं ब्रिटिश आक्रमण का सशस्त्र विरोध करूं, तो यह मेरे लिए उचित ही होगा।

मुझे यह भी कहना चाहिये कि इस बात को स्वीकार करने में मुझे किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं है कि एक वीर पुरुष की अहिंसा, यदि इसका व्यापक रूप से प्रयोग किया जाय तो हिंसा को अनावश्यक सिद्ध कर देगी। लेकिन ऐसी अहिंसा के अभाव में मुझे चाहिए कि इस क्रान्ति की प्रगति को रोकने तथा इसको असफल बनाने के लिए धर्म शास्त्र की सूक्ष्मताओं से ढकी हुई कायरता को स्थान न दूं।

क्रान्ति के अन्तिम अध्याय की पेचीदगियों को स्पष्ट रूप में समझ कर, हमें अपनी सेनाओं को तैयार और संगठित करना है और उन्हें अनुशासन की शिक्षा तथा ट्रेनिङ्ग देनी है। जो भी कुछ हम करें, निरन्तर हमें इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि हमारा यह कार्य केवल षड़यन्त्र रूप में ही नहीं होगा। यह जन-समूह का सर्वाङ्गीण विद्रोह होगा और यही हमारा लक्ष्य है। इसलिए हमारे विशाल टेक्निकल कार्य के साथ-साथ हमें जन-समूह में, गांवों के कृषकों, कारखानों, खानों, रेलों तथा अन्य स्थानों में काम करने वाले श्रमिकों में—प्रभावशाली कार्य करना चाहिए। हमें चाहिए कि हम उनमें

निरन्तर प्रचार करें, उनकी वर्तमान कठिनाइयों में सहायता करें, उनको वर्तमान मांगों की लड़ाई के लिए उनका सङ्गठन करें। हमारे विविध कार्यों के लिए इनमें से चुने हुए सैनिक भरती करें और राजनीतिक तथा टेक्निकल दृष्टि से उनको ट्रेनिङ्ग दें। शिक्षण के द्वारा थोड़े लोग वह सफलता प्राप्त कर सकते हैं, जिसे पहले हजारों लोग प्राप्त नहीं कर सके थे। प्रत्येक फिरके, ताल्लुके, थाने, कारखाने और वर्कशाप में या अन्य औद्योगिक केन्द्रों में हमारे सैनिक का एक ऐसा दल अवश्य होना चाहिए, जो आगामी विद्रोह के लिये भावनाओं और सामग्री की दृष्टि से सुसज्जित हों।

भारतीय सेना तथा सरकारी व्यवस्था के सम्बन्ध में भी हमें कार्य करना है। हमें आन्दोलन और प्रदर्शन सम्बन्धी कार्य करने हैं। स्कूलों, कालिजों और बाजारों में हमारे लिए कार्य है। रजवाड़ों में और भारत की सीमाओं पर भी कार्य करना है। यहां पर हमारी तैयारियों को अधिक साकार रूप में वर्णन करना मेरे लिए सम्भव नहीं है। इतना ही कह देना पर्याप्त है कि हमें अत्यधिक कार्य करना है और प्रत्येक व्यक्ति के लिए कार्य है। बहुत-सा कार्य तो इसी समय किया जा रहा है। लेकिन अभी और विशाल कार्य करना बाकी है।

युवकों के अतिरिक्त इस समस्त कार्य को कौन पूरा कर सकता है? क्या यह आशा करना अत्यधिक है कि हमारे विद्यार्थी जिन्होंने अभी ही बड़ा गौरवपूर्ण उदाहरण उपस्थित

किया है, अपने वीरतापूर्ण कार्यों का अनुसरण करते रहेंगे और जो वचन इन्होंने दिए हैं उनका पालन करेंगे।--स्वयं विद्यार्थी ही इसका उत्तर देंगे।

मुझे यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि तैयारी का यह अर्थ नहीं है कि लड़ाई कुछ समय के लिये बन्द हो जायगी। नहीं, "झड़प" "सीमा क्षेत्र की कार्रवाई", "छोटी-मोटी मुठभेड़", "लुका-छिपी की लड़ाई", "गश्त"—यह सब जारी रहना चाहिए। यह तो आक्रमण की तयारी ही है।

जनता में पूर्ण विश्वास और अपने लक्ष्य में श्रद्धा रखते हुए हमें आगे बढ़ना चाहिए। हमें दृढ़ता से कदम रखना चाहिए। हमारा हृदय दृढ़ निश्चय की भावना से पूर्ण और दृष्टिकोण स्पष्ट होना चाहिए। भारतीय स्वतन्त्रता का सूर्य क्षितिज से ऊपर निकल आया है। हमारे सन्देह, झगड़े निष्क्रियता और अविश्वास के बादल इस सूर्य पर आवरण डाल कर हमें कहीं अपने ही द्वारा उत्पन्न किए हुए अन्धकार में न डाल दें।

अन्त में, साथियो, मैं यह कहना चाहूँगा कि एक बार फिर आपके सम्मुख अपनी सेवाएं प्रस्तुत करके मुझे अनिर्वचनीय सुख और गौरव का अनुभव हुआ है। आपकी सेवा करने में, हमारे नेता के अन्तिम शब्द "करो या मरो" मेरा पथ-प्रदर्शन करेंगे, आपका सहयोग मेरी शक्ति और आपका आदेश मेरी प्रसन्नता होगी।

भारत के किसी स्थल से— जय प्रकाश

महान विश्वास घात

इधर दिल्ली में जय प्रकाश ने एक बार पंजाब के कार्य-कर्ताओं का आवश्यक सम्मेलन बुलाया। अगस्त आन्दोलन में पंजाब कोई भी उल्लेख्य भाग नहीं ले रहा था–इसका उन्हें बड़ा असंतोष था। वह पंजाब में भी व्यवस्थित आन्दोलन चाहते थे। और यह बताना व्यर्थ है कि इसी उद्देश्य से वह पंजाब का दौरा करना चाहते थे।

जय प्रकाश के लिये ब्रिटिश सरकार चुप नहीं थी, उसका भी मायावी जाल चारो ओर फैल रहा था। वह अब तक गिरफ्तार नहीं कर लिये गये थे यही आश्चर्य की बात थी। आस्तीन में सांप रहते हुये भी वह कई बार बच गये। उनके साथियों में विभीषण जैसे लोग थे—और तारीफ यह कि जय प्रकाश का उन पर विश्वास था। कहा जाता है कि जय प्रकाश के एक साथी ने ही 'क्विसलिंग का पार्ट अदा किया।

अपनी गिरफ्तारी का हाल बताते हुये जय प्रकाश ने इस चीज पर स्वयं प्रकाश डाला है। वह कहते हैं 'एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहने के बाद में सोचने लगा था कि अब

में गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। दिल्ली की यूनिट भी कुछ निश्चिन्त हो गई थी, और यही कारण मेरी गिरफ्तारी का हुआ। ....मेरा विश्वास भ्रम सिद्ध हुआ।"

१७ सितम्बर १९४३ को जय प्रकाश दिल्ली से पेशावर की ओर रवाना हुए। रात में कोई घटना नहीं घटी और उन्हें शांति की निद्रा नसीब हुई। १८ सितम्बर को प्रातः काल ट्रेन अमृतसर पहुंची। ज्यों ही जय प्रकाश खिड़की के पास चाय लेने के लिये पहुंचे कि कुछ लोगों ने बाहर से डिब्बे का दरवाजा खट खटाया। आगन्तुकों को यात्री समझ कर उन्होंने खिड़की खोल उन्हें अन्दर आजाने को कहा। इन आगन्तुकों ने भीतर आकर इधर-उधर देखना प्रारम्भ कर दिया, वह सब के सब खाली हाथ थे। इतने में कुछ सिखों के साथ एक गोरा भी आ पहुंचा। जय प्रकाश समझ गये कि अब वह पुलिस के सिकंजे में हैं; उन्होंने गोरा आगन्तुक से पूछा—तुम कौन हो तुम्हारा क्या नाम है? रेलवे के कोई अधिकारी तो नहीं हो ?

'नहीं मैं रेलवे का कोई अधिकारी नहीं हूँ मगर मैं आपका नाम जानना चाहता हूँ'—आगन्तुक ने कुछ दृढ़ता से कहा।

'मेरा नाम एस. पी. मेहता है'—जय प्रकाश ने उत्तर दिया।

सारा डिब्बा देख लेने के बाद उस गोरे पुलिस अधिकारी ने कहा—'मैं आपकी तलाशी लेना चाहता हूँ।'

तलाशी लेने पर जय प्रकाश के पास कुछ भी न मिला।

जय प्रकाश की तलाशी लेने वाला व्यक्ति लाहौर का पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट विलियम राबिन्सन था। उसे घोर आश्चर्य हुआ कि उनके पास पिस्तौल या ऐसी ही अन्य कोई वस्तु क्यों नहीं है?

उसने बाद में जय प्रकाश को बताया कि उसे यह आदेश मिला था कि यदि वह (जय प्रकाश) गिरफ्तारी के समय कोई कठिनाई उपस्थित करें तो उन्हें गोली मार दी जाय।

पुलिस इस बार विजयी बनी मगर कैसे?—यह भारतीय-हृदय के समझने का विषय है।

गोरे अधिकारी और सिख पुलिस मैनों ने इस सेनानी को बन्दी बनाकर लाहौर किले में रखा और शक्ति भर यातनाएँ पहुँचाईं।

आज भी इस अतीत काल की घटना को याद कर जय प्रकाश का हृदय दुःख से भर जाता है। इसलिए नहीं कि वह बन्दी बना लिए गए थे और न इसीलिए कि अगस्त क्रान्ति असफल रही, उनके दुःख का कारण उस क्रान्ति को आगे न बढ़ा सकने की स्मृति में है।

लाहौर किले में जय प्रकाश को १६ महीने तक काल कोठरी में रखा गया। उन्हें कष्टित और कुंठित करने के कोई उपाय बाकी नहीं रखे गए। पंजाब, युक्त प्रदेश, बिहार और आसाम

के उन सभी निर्दय अफसरों को, जिन्होंने पिछले आतंक वादी आन्दोलन को दबाने में ख्याति प्राप्त की थी, लाहौर पहुँचने का निमंत्रण मिला था। किले में पुलिस ने Torture Room बना रखा था--जहां जय प्रकाश की कोमल काया के साथ अमानवीय अत्याचार चलते थे। यहां पुलिस के क्रूर अफसर जय प्रकाश से नित्य ही तरह-तरह के प्रश्न पूछते, निर्दय पीड़ाएँ पहुँचाते, जिससे वह उनसे रहस्य की बातें कहलवा सकें।

लगातार कई-कई दिनों तक जय प्रकाश को सोने नही दिया जाता था। वह जिस कोठरी में रहते वह बड़ी तंग और अंधेरी थी–उसी सील भरी कोठरी में उन्हें सोना पड़ता था। हाथों में २४ घंटे हथकड़िएँ पड़ी रहतीं। वहां के अत्याचारों के खिलाफ उन्हें भूख हड़ताल भी करनी पड़ी।

जय प्रकाश ने इस सम्बन्ध में भारतीय सरकार के गृह-सदस्य को पत्र लिखना चाहा, मगर उन्हें इसकी आज्ञा नहीं मिली।

पूर्णिमा बनर्जी ने जय प्रकाश को छुड़ाने के लिए लाहौर हाईकोर्ट में हैबिअस कार्पस की दरखास्त दी थी, जिस पर बहस के लिए प्रसिद्ध बैरिस्टर पारदीवाला लाहौर पहुंचे और पंजाब की पुलिस की आज्ञा पर गिरफ्तार कर लिए गए। पीछे पारदी वाला को छोड़ दिया गया। स्वयं लाहौर हाईकोर्ट ने पंजाब की पुलिस की निन्दा की।

जो हो, इन सब बातों का यह प्रभाव हुआ कि जय प्रकाश

पर होने वाले अत्याचारों में बहुत कमी आ गई और वह डा० लोहिया के साथ आगरा सेन्ट्रल जेल को बदल दिए गए।

सन् ४५ के अन्त में आने वाला ब्रिटिश पार्लमेंटरी शिष्ट-मंडल जब आगरा पहुंचा तो मंडल के सदस्य श्री सोरेन्सन, श्रीमती निकोल और श्री कोरले ने जय प्रकाश से जेल में मुलाकात की। तीनों ही जय प्रकाश के व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित हुए। जय प्रकाश को छुड़ाने के लिये ब्रिटेन की मजदूर सभा के सदस्यों ने—जिनका स्थान पार्लियामेंट में था—भारत सरकार को तार दिए।

स्वयं महात्मा गांधी ने वायसराय को पत्र लिखकर जय-प्रकाश को छुड़ाने की मांग की थी। भारतीय इतिहास में यह बात भुलाने की बात नहीं कि वायसराय ने जय प्रकाश को सबसे खतरनाक व्यक्ति बताकर और यह कहकर कि उनकी पार्टी हिंसक मनोवृत्तियों के समीप रही है—देश रक्षा के नाम पर उन्हें छोड़ने से इन्कार कर दिया।

हाय रे पराधीन भारत !

अन्त में ११ अप्रैल '४६ को आगरा सेन्ट्रल जेल से जय प्रकाश अपने साथी डा० लोहिया के साथ तब छोड़े गए जब अन्तर्कालीन सरकार बनाने के उद्देश्य से कैबिनेट मिशन भारत आया।

समाजवादी कार्यक्रम की आवश्यकता

कांग्रेस के करांची अधिवेशन के प्रस्तावों को सामने रख कर ही कांग्रेस ने निर्वाचन संग्राम में भाग लिया है। अभी गत निर्वाचन संग्राम के अवसर पर भी कांग्रेस की ओर से जो घोषणा पत्र प्रकाशित किया गया—उसमें कांग्रेस का मुख्य ध्येय, वही करांची अधिवेशन का, देश की कोटि कोटि बुभुक्षु जनता को आर्थिक स्वाधीनता प्रदान करना और उसकी जीवन-यात्रा प्रणाली को समुन्नत बनाने का है।

इसमें सन्देह नहीं, कांग्रेस में मिलकर देश के सभी श्रेणी के राष्ट्रवादियों ने भाग लिया है और उसे विदेशी शासन से मुकाबला करने के लिए एक जबर्दस्त मोर्चा बनाया है। उग्र और नरम, गांधीवादी और समाजवादी, अहिंसा नीति में विश्वास करने वाले और अहिंसा को केवल राजनीतिक अस्त्र के रूप में ग्रहण करने वाले, सभी विचार के लोगों ने कांग्रेस योग दान दिया है। उसके नेतृत्व को स्वीकार किया है और उसके कार्य क्रम को मानकर स्वातंत्र्य संग्राम को शक्तिशाली

बनाया है। यह निश्चित है कि कांग्रेस के आन्दोलन के फलस्वरूप देश की गरीबी, निरक्षरता एवं अज्ञान का निवारण होगा और जनता पहले की अपेक्षा अधिक सुखी, समृद्ध और संपन्न होगी। इस विचार से यदि यह कहा जाय कि कांग्रेस ने मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव स्वीकृत किया है और उसके आधार पर 'उसने अपना जो कार्यक्रम जनता के सामने रखा है, उससे जनता का कल्याण होगा और उसकी जीवन यात्रा-प्रणाली पहले की अपेक्षा समुन्नत होगी, तो इसमें किसी को आपत्ति नहीं होगी। कांग्रेस के इस जन-कल्याण के दावे को किसी प्रकार भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

फिर भी कांग्रेस आन्दोलन किस प्रकार क्रमशः गण-विप्लव के मार्ग पर अग्रसर हुआ है इसका आभास १९४२ का विप्लव देता है। जनता, आज की जनता सभी बातों की स्पष्ट व्याख्या चाहती है। वह अस्पष्टता के प्रति भी विप्लव चाहने लगी है। कांग्रेस के वर्तमान संगठन और उसकी कार्य प्रणाली को देखते हुए—इसका आभास नहीं मिलता कि देश में वास्तविक अर्थ में जनता का राज्य स्थापित होने देने की क्षमता उन कार्य-क्रमों में है। कांग्रेस की वर्तमान नीति में आमूल-परिवर्तन का स्वप्न नहीं पूरा हो सकता। कांग्रेस कार्यक्रम और समाजवादी कार्यक्रम के जो मौलिक भेद हैं—वह भेद जब तक बना हुआ है, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि कांग्रेस की नीति कोटि-कोटि बुभुक्षु जनता को सन्तोष दे सकती

है। समाज तन्त्रवाद के सम्बन्ध में जिनकी धारणा स्पष्ट नहीं है, वह ही कांग्रेस के प्रस्ताव और कार्यक्रम में समाजवाद के आदर्श एवं मतवाद को पा सकते हैं।

कांग्रेस के नेता सर्वांश में पूंजीवाद के समर्थक हैं—ऐसा कहना अन्याय होगा, न-ही वह ऐसा चाहते हैं कि धनिक वर्ग द्वारा श्रमजीवियों का शोषण होता रहे। किसानों और मजदूरों के विरुद्ध धनिकों के अधिकारों का संरक्षण करने के लिए भी कांग्रेस के वर्तमान नेता तैयार नहीं हो सकते हैं ऐसा करना उनके लिए हितकर नहीं रहेगा मगर कांग्रेस का जो कार्यक्रम है उसमें पूंजी का महत्व है, धनतन्त्र के अभ्युदय को वह रोक नहीं सकते। जन साधारण की जीवन-यात्रा प्रणाली उससे अच्छी हो सकती है, उसकी अपनी चीज नहीं हो सकती। श्रमिकों के लिए उपयुक्त वेतन की अवस्था, काम करने के निर्दिष्ट घंटे, सन्तोष जनक वातावरण, बुढ़ापे में पेंशन, रोग और बेकारी से रक्षा आदि बातें आज संसार के पूंजीवादी देशों में भी लभ्य हैं। धनिकों द्वारा शासित, समस्त पूंजीवादी देशों की सरकारों ने यह सब सुविधायें श्रमिकों को प्रदान करदी हैं। ऐसा करने में उनके स्वार्थ पर किसी भी रूप में आघात नहीं पहुंचा है। इङ्गलेंड जैसे साम्राज्यवादी देश में भी वहां के श्रमिकों को यह सब सुविधाएँ प्रथम से ही प्राप्त हैं—तो क्या वहां जन साम्य है ?

भारतीय स्वतन्त्रता का आदर्श, इतना निम्न रखकर—

स्वराज्य का स्वप्न देखना व्यर्थ है। यहां के मजदूरों के लिए कुछ बढ़ी हुई सुविधायें ही नहीं चाहिए। उन्हें अपने लिए और अपना काम करने का विश्वास अपेक्षित है।

किसानों और खेतिहर मजदूरों की अवस्था को देखते हुए, एक बार कोई भी हृदय यह सोचने को वाध्य होगा कि इनको सुखदजीवन देने और उन्नत बनाने का प्रयास—सुधारों से पूरा नहीं होने का है। रोग इतना असाध्य हो गया है कि सुधारों की दवा काम नहीं कर सकती—इन्हें बचाने के लिए, जीवित रखने के लिये पूंजीवाद को—पूंजी के सभी तंत्रों को एक बार मिटाना ही पड़ेगा। विभिन्न प्रांतों में भूमि-प्रणाली भिन्न-भिन्न हैं, कहीं जमीदारी प्रथा प्रचलित है, कहीं रैयतवारी प्रथा। खेत जोतने वाले किसान और सरकार के बीच न मालूम कितने शोषण-कर्त्ता हैं, जिनके द्वारा किसानों का शोषण होता है। जहां जमीदारी प्रथा नहीं है, वहां भी अधिकांश भूमि पर थोड़े से लोगों का मालिकाना हक है। किसानों के हाथ से जमीन छिनकर ऐसे लोगों के हाथों में चली जा रही है, जिनका काम खेती करना नहीं है। खेतिहर मजदूरोंकी संख्या बढ़ती जा रही है—पहले के किसान आज खेत मजदूर हैं। ऐसी स्थिति में किसान और सरकार के बीच जो लोग जमीन के हकदार हैं—जमीन्दार, मालगुजार और तालुकेदार किंवा इसी तरह के दूसरे लोग—उन्हें मिटाना ही पड़ेगा। हरजाना देकर उनका हक सरकार हासिल करले—इससे किसानों की दशा में सुधार नहीं हो

सकता । हरजाना देकर हक खरीदना तो अत्यन्त अव्यवहारिक है। स्वयं महात्मा गांधीने भी लुई फिशर के साथ होने वाली बात-चीत में यह स्वीकार किया है कि जमींदारी प्रथा का, हरजाना देकर, विनष्टी-करण अव्यवहाकि है—आर्थिक-दृष्टि से घातक भी है।

और भी, जमींदारी प्रथा के न रहने पर भी अधिकांश भूमि के ऊपर थोड़े से धनिक किसानों का मालिकाना हक बना ही रहेगा। आगे चलकर उनके भीतर भी बहुत से जोतदार हो जायंगे, जिनके श्रम का वह शोषण करेंगे। खेतिहर किसानों की अवस्था ज्यों की त्यों बनी रहेगी। इनके पास इतने पैसे कहां होंगे कि वह जमीन खरीद सकें ? मौलिक अधिकारों में कहा गया है कि खेतिहर मजदूरों को क्रीतदास की अवस्था से मुक्त कर दिया जायगा, मगर यह मुक्ति क्या इनकी वास्तविक मुक्ति होगी ? गांव छोड़कर यह शहरों की ओर दौड़ेंगे और वहां कल-कारखानों में मजदूर बनकर काम करेंगे। इस तरह धनिक वर्ग को धनोत्पादन के लिए और भी अधिक संख्या में मजदूर मिलते रहेंगे।

खेतिहर मजदूरों को जमींदारों से जो स्वाधीनता मिलेगी उसको वह फिर धनिक वर्ग के निकट प्रतियोगिता में कम मूल्य में विक्रय करने के लिये वाध्य होंगे। कृषि-प्रथा में सुधार होने, वैज्ञानिक प्रणाली से खेती करने और समवाय कृषि प्रणाली

प्रचलित होने से किसान खुशहाल तो होंगे, जमीन की उर्वरा शक्ति बढ़ेगी—मगर सब कुछ होने पर इस प्रयोग से भी कोटि-कोटि जनों की गरीबी का नाश नहीं होगा।

कृषि भूमि प्रणाली में आमूल परिवर्तन करने तथा मालिकाना हक को हटाकर भूमि का राष्ट्रीय करण करने के संबन्धमें कांग्रेस-कार्यक्रम में कोई स्पष्टी करण नहीं है। ध्वंशोन्मुख जमींदारी प्रथा और पंगु धन-तंत्र की प्रथा दोनों ही जब तक किसी न किसी रूप में कायम रहेगी तब तक समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन नहीं हो सकता।

भारतीय स्वराज्य में सब प्रकार के मालिकाना हक का विलोप करना होगा। भूमि राष्ट्र की संपत्ति होगी और उस पर समस्त जनता का अधिकार होगा।

प्रधान-प्रधान व्यवसायों का राष्ट्रीय करण करने—खान, जंगल आदि पर सरकारी अधिकार जमाने के लिए भी आज कांग्रेस का नेता वर्ग कृत संकल्प कहां दीखता है? इंगलेण्ड की मौजूदा सरकार का कदम बैंक आफ इंगलेण्ड के राष्ट्रीय करण के लिये उठता है मगर भारत?

यह प्रत्यक्ष है कि भारत का कल्याण समाजवादी कार्यक्रम को अपनाए बिना कभी संभव नहीं है।

जब तक भारत परतंत्र है—कहने वाले भले ही यह कहने

की विडम्बना करें कि भारत स्वतंत्र हो गया, वह स्वातंत्र्य मन्दिर के मुख्य द्वार पर आगया—जब तक उसके हाथों में कुछ करने की शक्ति नहीं आ जाती, तब तक देश वासियों का ध्येय स्वाधीनता-लाभ करना ही हो सकता है। पराधीन देशों में प्रधानतः दो ही दल हो सकते हैं—एक वह जो स्वाधीनता के पक्ष में है और दूसरा स्वाधीनता विरोधी मगर देश के स्वाधीन होजाने पर यह प्रश्न आवश्यक हो जायगा कि किस प्रकार की शासन-पद्धति प्रचलित होनी चाहिये और उस शासन-पद्धति में वास्तविक अधिकार-सूत्र किस के हाथों में होना चाहिये ?

समाज वादी दल—देश के सामने यही जीवन-जागृति का प्रश्न उपस्थित करता है।

को अभी अपना कर्तव्य समझना है। उसे विदेशी लुटेरों से लड़ना है और घर के शोषकों का भी अन्त करना है। दोनों ही भार उसे सँभालना है। उसे समाजवादी कार्यक्रम को राष्ट्रीय-नीति के रूप में लाने के लिये देशव्यापी संघटन करना होगा। यह कार्य श्रमसाध्य है इसके लिये दीर्घ अध्यवसाय, आत्म-विश्वास और आदर्श निष्ठा आवश्यक है।

जितने स्थायी स्वार्थ वाले दल हैं, वह संघटित होकर समाजवादी दल का मुकावला करेंगे और नाना उपायों से

छल-बल कौशल का प्रयोग करेंगे। उनके पीछे संघटन और पूंजी का बल होगा।

और दोनों ही लड़ाई चल रहीं हैं—

ऐसे समय में देश का कर्तव्य है, कोटि-कोटि बुभुक्षु जनता का कर्तव्य है कि वह समाजवाद को समझे और समझे धनिक-तन्त्र को।

वरदान रूप में प्रकाश युग का संदेशवाहक जय प्रकाश उसके सामने है।

महात्मा जी, जवाहरलाल और जयप्रकाश

रामायण में एक-एक कर तीन नाम आते हैं—कथावस्तु के साथ, वह नाम हैं राम, लक्ष्मण और भरत। शत्रुघ्न आदि भी हैं और हैं केवल जानकारी के लिए। यह हमारी धारणा है औरों की बात हम नहीं जानते।

तो हम कहना चाहते थे, राम के बाद रामायण की काया में लक्ष्मण ही अति व्याप्त हो रहे हैं, केवल एक गुण को लेकर वह गुण राम के पीछे चलने का है। वैसे यदि लक्ष्मण के चरित्र की समीक्षा की जाय तो वह बहुत ही हल्के ठहरेंगे, मात्र क्रोधी, अविनयशील और मुँह फट। और भरत? हां, हम उनके लिए यही कहेंगे, उन्हें रामायणकार ने नहीं समझा, अब तक दुनियां की नजर भी उन्हें ठीक रूप में नहीं देख सकी, आशा है आने वाली नयी पीढ़ी पर—वह युग परख का होगा।

यही कुछ हाल भारत के वर्तमान राजनीति जगत की है।

हिर फिर कर तीन ही नाम सामने आते हैं। महात्मा जी, जवाहरलाल और जयप्रकाश। महात्मा जी, उनकी विचार धारा,

देश पर उनका प्रभाव और उनकी पूजा, सभी चीजें अपनी जगह पर सही हैं। महात्मा जी अप्रतिम हैं, उनकी विचार-धारा राजनीति से कहीं आगे बढ़कर आध्यात्मिक रूप अपना चुकी है, देशवासियों के हृदय में उनका प्रभाव, देव-प्रभाव का आकर्षण रखता है और यही कारण है कि उनकी पूजा की आड़ में असंख्य अवसर वादी प्राणी अपनी कमजोरी, अपना विकृत रूप और अपना पतन शील आसन सभी को आकर्षक बनाने में समर्थ हैं।

'राम एक तापस तियतारी, नाम अमित खल कुमति सुधारी।'

बचाव की कोई राह नहीं सूझने पर कोई भी महात्मा गांधी की आड़ ले सकता है। महात्मा जी का त्याग और प्रभाव उसकी रक्षा करेगा ही।

दूसरी जगह पर जवाहरलाल हैं। लक्ष्मण के अवतार। उन्हें मिला है—उनकी यह जगह महात्मा जी के द्वारा विरासत में। यह बात अलग महत्व रखती है कि वह सर्वांश में महात्मा जी की नीति के पुजारी नहीं हैं। स्वभाव वश कभी-कभी उबाल खा जाते हैं। उनकी कर्तव्य निष्ठा में—गिने-चुने लोग ही ठहरेंगे। लक्ष्मण की तरह ही कभी-कभी वह ऐसी बात भी कह जाते हैं, जो मर्यादा की सीमा से बाहर की बात हो जाती है।

तीसरे स्थान पर हैं जय प्रकाश—प्रकाश युग के अग्रदूत।

उन्हें अधिकार नहीं चाहिये—निस्पृह सेवा-पथ पर बढ़ना उन्हें प्रिय है। स्वयं ही वह अधिकारों की उपेक्षा करते हैं सो बात नहीं है—प्रत्येक कर्तव्यव्रती के लिये उनका संदेश है, अधिकार-मद से बचने के लिये। पद पर पहुँच कर मनुष्य कुछ का कुछ बन जाता है, खासकर यदि वह पद भ्रामक और स्वत्व-हीन हुआ तो और भी मिट्टी पलीद होती है।

प्रमाण में प्रांतीय असेम्बली ही नहीं, केन्द्रीय धारासभा और अन्तर्कालीन सरकार का उदाहरण सामने है।

सत्य खूबसूरत नहीं होता मगर उसका परिणाम बहुत ही खूबसूरत होता है।

जय प्रकाश ने बहुत दिनों पहले ही कहा था कि कांग्रेस जैसे ही पद ग्रहण की ओर जायगी वैसे ही उसे प्रतिक्रांति का सामना करना पड़ेगा। अंग्रेजों के यहां रहते यह कभी संभव नहीं कि कांग्रेसी कुछ कर सकें। आज नेहरू जी को सीमाप्रांत की यात्रा में जो कुछ देखना और सुनना-सहना पड़ा, वह किसके द्वारा ? बिहार में सैनिकों ने गोली के घाट हिन्दुओं को उतार दिया—इससे किस की शान बढ़ गई, किसकी इज्जत पर पानी फिर गया, यह पदाधिकारी बनकर नहीं समझा जा सकता। हम मानते हैं—वह गोली कांड जवाहर लाल की आज्ञा पर नहीं हुआ मगर सवाल जवाहर लाल का नहीं है—वहां के मिनिस्टरों, सर्व श्री बदरी नाथ वर्म्मा, सैयद महमूद,

अनुग्रह नारायण सिंह और श्रीकृष्ण सिंह का भी सवाल नहीं है, भले ही श्री कृष्ण सिंह कहते रहें गोली मैने चलवाई—सैयद महमूद आगे बढ़ कर कहें, नहीं इसमें दोष मेरा है, फिर भी बात वहीं रहती है। वह सब के सब 'कुछ' भी नहीं हैं—कांग्रेस सब कुछ है और उसी का 'पोजीशन' खराब हुआ है। बादशाह खान ने साफ-साफ परिस्थिति को सामने रख दिया है। ऐसी हालत में पद ग्रहण के पहले देश को अंग्रेजों के प्रभाव से मुक्त करना है और यह काम पद ग्रहण कर लेने से नहीं हो सकता। पद ग्रहण कर लेने के बाद जवाहर बिहार का दौरा भर कर सकते हैं बंगाल पहुंचने का साहस नहीं अपना सकते। जवाहर को इस स्थिति में क्यों पहुंचना पड़ा—केवल पद ग्रहण को लेकर।

जय प्रकाश ने यही सोचकर पद ग्रहण का विरोध किया और युद्ध के लिये कांग्रेस को उत्साहित किया। पद ग्रहण करने वाले, आज नहीं कल इस गलती को महसूस करेंगे, हां, उनकी स्थिति, बाजी लौटा लेने की स्थिति उस समय नहीं होगी।

देश में आज हजारों जानें दंगों में चली गईं। इतनी ही जानें यदि अंग्रेज सिपाहियों की संगीनों की भेंट करदी जाती तो न तो कांग्रेस को अपना राष्ट्रीयपने का दावा त्याग करना पड़ता और न बंगाल को ही खून के आंसू रोना पड़ता। शासक बन चुकने के बाद नेता अपने नेतृत्व को अछूता लाकर फिर से

जनता के सामने नही रख सकता। हमें नेताओं की आवश्यकता है न कि शासकों की। जवाहरलाल का शासन अभी हमें नही चाहिए, जरूरत है नेतृत्व की।

फिर भी दूसरी ओर हम देखते हैं कि छोटे दिमाग के कांग्रेसी नेता समाजवादी दल पर यह आक्षेप करते हैं कि वह कांग्रेस में भेद और फूट पैदा कर रहा है और विधान परिषद् के विरोध में प्रचार एवं कांग्रेसी नेतृत्व पर संदेह का भाव बढ़ा रहा है।

ब्रिटेन के हाथों से ताकत छीन लेने के अभिप्रायः से अपनी आखिरी लड़ाई के लिए यदि हम शक्ति संचित नहीं करते तो गृह युद्ध और प्रतिगामी शक्तियों की सहायता से हम ब्रिटिश साम्राज्य शाही को फिर पदार्पण करते देख सकते हैं। हर हालत में मध्य कालीन सरकार की स्थिरता और उसकी शक्ति तथा विधान परिषद् की इच्छा को कार्यान्वित करना उस शक्ति पर निर्भर होगा जिसको हम भारत के खेतों और खलिहानों, कार-खानों और सड़कों पर संचित एवं एकत्र करेंगे। इस ओर हमारा ध्यान कहां है ? यह संघटित जन शक्ति की प्रभाव-कारिता तथा शासन-परिवर्तन के लिए उसकी तत्परता पर भी निर्भर होगा जो ब्रिटिश सत्ता के इस देश से पूर्णतः और तत्काल हट जाने की हमारी मांग के पीछे होगी।

समाजवादी कांग्रेसी नेतृवर्ग के विरुद्ध संदेह नही उत्पन्न

करना चाहते पर वह आत्म तुष्टि जैसी उस खतरनाक भावना को दूर करने के लिए कटिबद्ध हैं जो राष्ट्रीय लोक-तंत्र वादी क्रांति का विध्वंश तक कर सकती हैं।

इसी खतरे का मुकाबला करने के लिए विपरीत स्थिति में भी जय प्रकाश आज भो कांग्रेस कार्य समिति में हैं।

एक बात और भी—

कांग्रेस अपने को लड़ाकू संस्था मानती है मगर एकही व्यक्ति के दोनों जगह रहने का परिणाम यह हुआ है कि सरकारी कामों का दायित्व भी कांग्रेसपर आगया है। यह स्पष्ट है कि प्रांतकी कांग्रेस सरकारें और केन्द्र की अस्थायी सरकार जनताकी राष्ट्रीय भावनाओं का पूरा प्रतिनिधित्व नहीं करती। कुछ लोग पदासीन हैं और शेष उनकी प्रतिष्ठा के संस्थापन में लगे हैं। राष्ट्रीय संग्राम का स्वरूप मिटता जैसा लगता है। जनता से अपील करने के स्थान पर नेता गण नौकर शाही के द्वारा आदेश देने लगे हैं। जनता की दुरवस्था की जांच कराई जाती है तो उन्हीं कर्मचारियों से जिनके हाथ, ४२ की रक्तिम होली के रंग में अब भी लाल हैं।

फल सामने है—चारो ओर असन्तोष चारो ओर हड़ताल।

युद्धोत्तर काल है, फौजी कानूनों का शिकंजा कुछ ढीला हुआ है—लोग अपनी व्यग्रता संभाल नहीं पा रहे हैं। सभी त्रस्त-

समारोहों को, कम्यूनिस्टों द्वारा आयोजित, कांग्रेस सरकारों को तंग करने का षड़यन्त्र नहीं कहा जा सकता। कांग्रेस का मंत्रि-मंडल इस समस्या का हल शक्ति प्रयोग से करना चाहता है—वह आगामी 'कल' को भूल रहा है।

प्रश्न हो सकता है—स्वयं महात्मा जी इस बिगड़े रवैये को कैसे देख रहे हैं, मगर हम कहेंगे, कांग्रेस का 'अन्तरंग गुट' महात्मा जी पर भी पूर्णतः छाया हुआ है। अपना काम उनसे सब बना लेते हैं और उनकी कम सुनी जाती है। दिल्ली की गत अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में—ऐसे ही गुट वालों ने देखा विरोध तगड़ा है, बस १५-२० मिनट के लिए गांधी जी को लाकर मंच पर स्थापित कर दिया। जब वह कहते हैं कि जिन्हें गोली चलानी हो वह मंत्रि-मंडलों से हट जांय तो कोई सुनने वाला नहीं। कराची कांग्रेस के मौलिक अधिकारों वाले प्रस्ताव में कहा गया है, भारतवर्ष में सबसे ऊँचा वेतन ५००) होगा। मंत्रियों के १५००) और पार्लमेंटरी सेक्रेटरियों के ७५०) मासिक वेतन का महात्मा जी 'हरिजन' में सार्वजनिक रूप में विरोध कर चुके हैं मगर किसने लेना बन्द किया ?

उस समय हमें बड़ा दुख हुआ था जब बदनाम कम्यूनिस्टों के मुख पत्र 'जन-युग' में बिहार के मिनिस्टर—नहीं प्रीमियर कहिए—श्री कृष्ण सिंह और कार्यानन्द शर्मा पर तुलनात्मक व्याख्या पेश करते हुए कहा गया था कि नेता का जीवन अपना

कर शर्माजी अपनी बची-खुची संपत्ति से भी हाथ धो बैठे और प्रीमियर साहब दरिद्रावस्था से ऊपर उठकर खासे जमींदार के रूप में आ गए—किस तरह ?"—हमें क्षुब्ध होकर भी चुप ही रहना पड़ा, जवाब देने की शक्ति हम में नहीं आई—यह हमारी स्थिति है।

हम जानते हैं कम्यूनिस्ट होने के पाप के कारण कार्यानंद शर्मा निर्वाचन-संग्राम में श्रीकृष्ण सिंह के संमुख नहीं टिक सके मगर क्या आगे भी हमारा काम इसी तरह चलता रहेगा ? पूंजीतंत्र हमें अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रहने देगा।

शेष में—हम इतना विश्वास रखते हैं कि जय प्रकाश के उद्भव से, समाज वादी कार्यक्रम के विस्तार से नेताशाही को पहला धक्का लग चुका है। यह दुर्भाग्य है, निश्चय ही दुर्भाग्य है—जिसको लेकर हम अवश्यंभावी से दृष्टि हटाकर परिवर्तन की प्रक्रिया को सरल नहीं बना रहे हैं। अब भी हम व्यक्तियों के मोह में फँसे हैं। राजा जी के आंसू—'अन्तरंग गुट' पोंछ सकता है, उन्हें केन्द्रीय सरकार में पदासीन कर मगर मद्रास प्रांत उनकी करनी को भुला नहीं सका सो नहीं भुलाएगा।

आज संसार की राजनीति तेजी से करवट बदलती हुई समाज वाद की ओर जा रही है, भारतीय राष्ट्रीयता को भी अन्ततः इसी सांचे में ढलना होगा। भारत का लेनिन होने का

गौरव किसे होगा ?—यह समझने के लिए हम अपना शिर उठाकर आगे की ओर देख सकते हैं।

दृष्टि पथ में कोई सामने है जरूर और वह है 'जय प्रकाश'

★

प्रतीक्षा कीजिए

हमारा आगामी आकर्षण

जय प्रकाश की वाणी